www.thearyasamaj.org

R.N.I. No. 2321/57
ओ३म्
रजि. सं. MTR नं. 04/2016-18
मार्च 2017
अंक 2

तपोभूमि

मासिक

सरदार भगतसिंह
(1907-1931)

www.thearyasamaj.org

श्री गुरु विरजानन्द आर्ष गुरुकुल वेदमन्दिर, मथुरा में ऋषि बोधोत्सव धूमधाम से मनाया गया

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी ऋषिबोध उत्सव 24 फरवरी 2017 को पूर्ण उत्साह के साथ मनाया गया। इस अवसर पर 51 कुण्डीय यज्ञ का आयोजन बड़ी भव्यता से किया गया। यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य नरेन्द्र जी के नेतृत्व में ब्र. अरविन्द और ब्र. आकाश द्वारा यज्ञ का सम्पादन कराया गया। 51 कुण्डीय यज्ञों से उठती हुई यज्ञ की ज्वालाओं का मनोहारी दृश्य और सैकड़ों यजमानों के मधुर स्वर श्रद्धामयी स्वाहा की गुंजार ऋषि युग का दृश्य साकार कर रही थी। यज्ञ के बाद महर्षि दयानन्द का पावन स्मरण करते हुए प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री उदयवीर जी उसफार और श्री देवीसिंह जी आर्य अकबरपुर मथुरा वालों ने ऋषिबोध उत्सव सम्बन्धी विचार रखे। ऋषि महिमा के सुन्दर गीत प्रस्तुत किये। इस अवसर पर गुरुकुल के छोटे से ब्रह्मचारी देवेश ने अष्टाध्यायी के सूत्र सम्पूर्ण कण्ठस्थ कर सुनाये अष्टाध्यायी में से जगह-जगह से ब्रह्मचारी को सूत्र बोलने के लिए कहा गया जिसको उसने सफलतापूर्वक सुनाया जिससे प्रसन्न होकर अध्यापक श्री बृजेश रावत ने दो हजार का पुरस्कार प्रदान किया। साथ ही मुख्य यजमान श्री कृष्णवीर शर्मा फरीदाबाद, श्री पूरनसिंह रिफाइनरी नगर मथुरा, मेजर धर्मेन्द्रनाथ सक्सेना, श्री योगेश यादव आदि महानुभावों ने भी ब्रह्मचारी जी को सहयोग राशि देकर पुरस्कृत किया। उसके बाद गुरुकुल के ही होनहार ब्रह्मचारी राष्ट्रवसु ने अपने मधुर स्वर से महर्षि स्तवन के गीत प्रस्तुत किये जिससे जन-मानस महर्षि दयानन्द की भक्ति से आप्यायित हो गया।

यह दिवस भारतवर्ष में सर्वत्र मनाया जाता है पुराणों के मानने वाले शिव के मन्दिर में उपवास रखकर जलाभिषेक करते हैं पर आर्य समाज के लिए यह दिवस मानो नव जागरण का सन्देश दिवस के रूप में ही मनाया जाता है। हम महर्षि दयानन्द के जीवन की इस घटना से प्रेरणा लेते हैं जो घटना तो सामान्य थी पर हम आर्यों के लिए अति विशिष्ट हो गयी। इससे विवेकीजनों को बड़ी प्रेरणा मिलती है। साधारण सी देखने वाली शिक्षाओं में अद्भुत तप भरा होता है। वेद में कहा है कि आखों वालो देखो कहने को यह साधारण वाक्य और बड़ी विचित्र शिक्षा लग रही है।

परन्तु गहराई से देखें तो बड़ा गहरा तथ्य इस सामान्य से वाक्य में छिपा है। यथार्थ में हम आँखें होते हुए भी नहीं देखते हैं। हम रोज मूर्ति पर चूहे चढ़कर प्रसाद खाते हुए देखते हैं। पर हमारा देखना साधारण देखना है वह देखना न देखने के बराबर है। वहीं जब बालक मूलशंकर ने शिवरात्रि के मूर्ति पर चूहे चढ़ते देखे तो उसका देखना सचमुच देखना था और उस देखने वाले बालक मूलशंकर को सत्य की ओर प्रेरित कर दिया और इतना प्रेरित किया वही अबोध बालक इस बोध दिवस पर बोध पाकर सारे

शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

www.thearyasamaj.org

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका
(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–63 संवत्सर 2073 मार्च 2017 अंक 2

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादकः
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

मार्च 2017

सृष्टि संवत्
1960853117

दयानन्दाब्दः 193

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन
आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ0 प्र0)
पिन कोड–281003

दूरभाषः
0565–2406431
मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4
कुटुम्ब	–श्यामसुन्दर दास	5–7
मनुष्य मात्र की सहायता करना	–बाबू सूरजभान वकील	8–11
आज्ञा पालन	–डॉ0 गोकुलचन्द नारंग	12–15
ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र	–पुरुषोत्तमदास	16–19
भाग्यवान गृहस्थी	–महात्मा प्रभुआश्रित महाराज	21–24
प्राण और मन	–पं0 कमलेशकुमार अग्निहोत्री	25–27
आपकी निन्दा आपकी योग्यता का....		29–30
अनल किरीट	–रामधारीसिंह दिनकर	31–32
गुरूकुल विश्व विद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) का प्रवेश प्रारम्भ		33

❁❁❁

वार्षिक शुल्क 150/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/– रूपये

www.thearyasamaj.org

वेदवाणी

लेखकः डॉ० रामनाथ वेदालंकार

गौओं का उपकार

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिद श्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु।। –अथर्व0 4.21.6

शब्दार्थः–

(गावः) हे गौओ! (यूयम्) तुम (कृशं चित्) कृश को भी (मेदयथ) हृष्ट पुष्ट कर देती हो, (अश्रीरं चित्) कान्तिहीन, श्रीविहीन को भी (सुप्रतीकम्) सुन्दर अंगोंवाला, (कृणुथ) कर देती हो। (भद्रवाचः) भद्र वाणीवालियो! तुम (गृहम्) घर को (भद्रम्) कल्याणमय, सुखी (कृणुथ) कर देती हो। (वः वयः) तुम्हारा दूध, नवनीत, दधि आदि भोजन अथवा तुम्हारा आयुष्य (सभासु) सभाओं में, गोष्ठियों में (बृहत् उच्यते) बहुत प्रशंसा पाता है।

भावार्थः–

गाय हमारी माता है। जैसे माता अपना स्तन्य पान कराकर अपने शिशुओं को परिपुष्ट करती है, वैसे ही गाय दुग्ध पिलाकर, नवनीत खिलाकर गोपालक को हृष्टपुष्ट करती है। गाय का दूध पीकर कृशकाय मनुष्य भी बलवान् हो जाता है, कान्तिहीन मनुष्य भी कान्तिमान्, सुन्दर अंगोंवाला, सुरूप हो जाता है। हे गौओ! जब तुम भद्र वाणी में रंभाती हो, तब वह तुम्हारा रंभा शब्द हमारा आह्वान करता हुआ, हमारा स्वागत और अभिनन्दन करता हुआ प्रतीत होता है। तुम्हारा भद्र रंभाना घर को भद्र और सुखमय कर देता है। तुमसे मिलनेवाले भोजन दूध, नवनीत, दधि, मिष्टान्न आदि की सभाओं में बहुत प्रशंसा की जाती है। सभा-सम्मेलनों में इस पर शोधात्मक निबन्ध पढ़े जाते हैं, व्याख्यान दिये जाते हैं, जिनमें बताया जाता है कि गाय के दूध आदि में क्या-क्या तत्त्व होते हैं और अन्य पशुओं के दूध आदि से इसमें क्या विशेषता होती है? सभाओं में हे गौओ! तुम्हारी आयु के विषय में चर्चा होती है कि गौओं की आयु कैसे बढ़ सकती है और इन्हें क्या दाना-चारा खिलाकर इनका दूध बढ़ाया जा सकता है, इनकी नसल कैसे उत्तम की जा सकती है?

हे गौओ! हम माता के समान तुम्हारी पालना एवं रक्षा करते हैं। हमें अपना शुद्ध पयःपान कराओ। हम कृशों को हृष्टपुष्ट एवं कान्तिहीनों को कान्तिमान् बना दो। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

कुटुम्ब

लेखकः– श्यामसुन्दर दास

बहु–विवाह कुटुम्ब सम्बन्धी एक बहुत ही बड़ा दूषण है। इससे स्त्री, पुरुष, सन्तान आदि सभी की प्रकृति दुष्ट हो जाती है और बहुत ही सुन्दर स्वभाववाली सपत्नियों के अभाव में कुटुम्ब की पूरी सत्यानाशी होती है। इतिहास में राजाओं के यहाँ जो बहुत बड़ी–बड़ी कौटुम्बिक घटनायें हुई हैं, उनमें बहुतों का बहु–विवाह के कारण संगठन हुआ है। महाराज दशरथ के तीन रानियां थीं, किन्तु वे रूपलावण्य के कारण अपनी छोटी रानी कैकई का सबसे अधिक आदर करते थे। इस प्रकार ज्येष्ठा हो जाने से उसकी स्वाभाविक इच्छा यही हुई कि उसका यह पद चिरस्थायी बन जावे। इसी से औचित्य को तिलांजलि दे उसने रामचन्द्र को वनवास दिला दिया और अपने पुत्र भरत के लिये राज्य माँगा। भाग्यवश भरत की मानसिक उच्चता साधारण से बहुत बढ़ी चढ़ी थी, जिससे भातृ–विरोध तो नहीं होने पाया और श्रीराम अपने उचित अधिकार से वंचित नहीं हुए, किन्तु फिर भी राजा दशरथ की अकाल मौत हो गई और रामचन्द्र को सीता, लक्ष्मण समेत चौदह वर्ष तक वनवास का कष्ट झेलना पड़ा। यह दुर्घटना सर्वतोभावेन बहु–विवाह पर अवलंबित थी। बहु विवाह ही के कारण से महात्मा ध्रुव ने बाल वय में भवन छोड़कर वन का आश्रय लिया था।

इसका एक बहुत बड़ा दूषण यह है कि पिता पुत्र के सम्बन्ध में वात्सल्य की मात्रा बहुत कम हो जाती है। सपत्नियों के सन्तानों को समझ पड़ने लगता है कि पिता अमुक विमाता और उसके सन्तानों का विशेष आदर करता है और हमारा वह एक क्रूर–हृदय अन्यायी मात्र रह जाता है। अनेकानेक प्रकट कारणों से साधारण विमाताओं में प्रेम नहीं रह सकता। इसीलिये उनके सन्तानों में भी विद्वेषाग्नि भड़का करती है। ऐसी दशा में भाइयों का सहज सखा वाला पद टूट जाता है और उनको सहज शत्रु की पदवी मिलती है। जहाँ जहाँ राज्यार्थ बंधुविनाशक युद्ध हुए हैं, प्रायः उन सब में विमाताभव दूषण वर्तमान थे। मुगलों के राज्य में इस कुप्रथा के उदाहरण परम प्रचुरता से मिलते हैं। युवराज सलीम (जहाँगीर शाह) ने अपने पिता अकबर के प्रतिकूल विद्रोह का झंडा खड़ा किया था। शाहजहाँ ने अपने पिता जहाँगीर से खुल्लम खुल्ला युद्ध किया और अपने भाई परवेज और खुसरू का वध कर डाला। विचारे जहाँगीर को राजपूतों ने सहायता दी, तब कहीं उसका सिंहासन बचा, यथा–

"सखर फूटा जल बहा अब क्या करैं जतन।
जाता घर जहाँगीर का रक्खा राव रतन।।"

इन सब उपद्रवों का पूर्ण कलंक उचित ही औरंगजेब के ऊपर जा पड़ा। इस नराधम ने अपने

www.thearyasamaj.org

तीनों भाइयों को मार पिता को कारागार दे और स्वयं अपने पुत्र मुहम्मद एवं कई भतीजों को यमलोक पठा राजसिंहासन पर अधिकार जमाया। सहसा देखने में यह एक बड़ा विप्लवपूर्ण कार्यसमुदाय समझ पड़ता है, किन्तु यदि बर्नियर का इतिहास देखिए तो प्रगट होगा कि स्वाभाविक नियमों से ही बढ़ते-बढ़ते क्रमशः इस पुरुष ने ये सब कार्य किए। ये कार्यसमुदाय मुख्यतया बहु-विवाह के दूषण पर अवलंबित हैं और अमुख्यतया शाहजहाँ की कुटुम्बसंचालन सम्बन्धी अव्यवस्था पर। शाहजहाँ अपने उद्यमी और बलाकांक्षी एवं असंतोषी पुत्रों को हाथ में न रख सका। अदृढ़ चित्तता के कारण वह आदि में कभी दारा की ओर झुकता था कभी औरंगजेब की ओर। इन्हीं कुटुम्ब सम्बन्धी दोषों ने भारतवर्ष की राज्यप्रथा को सैकड़ों वर्षों तक डांवाडोल रक्खा। कुटुम्ब भी एक छोटा सा राज्य है। जो पिता इसे सावधानी से चला सकता है, उसके पुत्र सत्पुरूष और सद्‌गुणी होते हैं तथा जो इसके उचित संचालन में असमर्थ रहता है, वह स्वयं अपने घर को नर्क बना देता है और उससे जो सन्तान निकलती हैं, वे प्रायः सब दुर्गुणी और असज्जन होती हैं। सुचालित रहने पर कुटुम्ब पृथ्वी पर स्वर्ग का आनन्द देता है। जो निष्कपट प्रेम और सच्चा बर्ताव इसमें होता है, वह साधारणतया प्रायः समस्त संसार में अप्राप्य रहता है।

कुटुम्ब सुचालन के अनेकानेक उदाहरण मिलेंगे, किन्तु राम और युधिष्ठिर के समान कौटुम्बिक नेता बहुत कम पाए जायँगे। महात्मा रामचन्द्र के यहाँ पहले एक दुर्व्यवस्था भी पड़ गई थी, किन्तु इन्होंने एवं भरत ने इस खूबसूरती से निभाया कि इनके व्यवहारों में उसका लेशमात्र भी कभी न देख पड़ा, श्रीरामचन्द्र जी के तीनों भाई इनसे और आपस में इतने दृढ़ प्रेमपाश से बद्ध थे कि आपस का साथ और अयोध्या छोड़ कर इनको बाहर राज्य करना तक पसन्द न था। महाराज शत्रुघ्नको रामचन्द्र ने बिना उनकी इच्छा के मथुरा का राज्य दे दिया, सो उन्हें तो धर्म समझ कर उसका पालन करना पड़ा, किन्तु भरत और लक्ष्मण ने भी एक-एक राज्य जीता पर फिर भी अयोध्या छोड़ वहां रहना पसन्द न करके अपने-अपने पुत्र को राज्यभार सौंप स्वयं अयोध्या ही में निवास करना सुखप्रद समझा। धन्य हैं, ऐसे कुटुम्बों को, धन्य है उसके नेता को और धन्य है उसके सब कुटुम्बियों को कि जहाँ रहकर प्रत्येक पुरुष को राज्य सुख से अधिक आनन्द प्राप्त था। जिस समय कारणवश श्रीराम ने न चाहते हुए भी लक्ष्मण का त्याग किया, तब वे इस संसार में कहीं भी न रह सके और उन्होंने सीधे गुप्तारघाट पर जाकर अपना शरीर छोड़ दिया। उनके वियोग को श्रीराम भी न सह सके और गुप्तारघाट की ओर चल पड़े। यह देख शत्रुघ्न ने मथुरा का राज्य पुत्र को दे एवं भरत ने राज्यमहल छोड़ श्रीराम का अनुगमन किया। इस प्रकार ये चारों भाई गुप्तारघाट में गुप्त हो गए। इन्होंने भ्रातृप्रेम का परम ज्वलंत उदाहरण संसार को दिखलाया है। यदि कुटुम्ब का संचालक श्रीराम के समान न्यायी हो, तो आज भी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से उदाहरण संसार में प्रस्तुत हो सकते हैं।

महाराज युधिष्ठिर ने भी कुटुम्ब-संचालन की योग्यता को पूर्ण रूप से प्रकट कर दिया है। इन्होंने यहाँ तक किया कि अपने भाइयों और स्त्री को जुए में हार दिया और दुर्योधन की सभा में क्षुद्र पुरुषों द्वारा

www.thearyasamaj.org

उनका भाँति–भाँति से अपमान हुआ, किन्तु किसी ने चूँ तक न की। जब दुर्योधन ने कहा कि इनमें से जो कोई युधिष्ठिर को अनीश कह देवे, वह दासत्व से तुरन्त मुक्त हो जावेगा, तब भी चारों भाइयों में से किसी ने भी ऐसा कहने का कलंक अपने ऊपर न लिया। वनपर्व को ध्यानपूर्वक पढ़ने से विदित हो सकता है कि कुटुम्ब का संचालन कैसे होना चाहिए? बहुत से कुटुम्ब–नेता अपने कुटुम्ब के जिस पुरुष को जितना गुणी एवं महान् देखते हैं उसकी उतनी ही प्रतिष्ठा करते हैं और जिसको कुछ असमर्थ पाते हैं उसका आदर तो दूर रहा, सहज स्नेह भी नहीं करते। यह कुटुम्ब–संचालन का एक बहुत बड़ा दूषण है किन्तु सूक्ष्म रीति से देखने पर अधिकांश कुटुम्बियों में पाया जाता है। महाराज युधिष्ठिर ने इससे शुद्ध प्रतिकूलता दिखलाकर अपना महत्व प्रदर्शित किया है। वनपर्व में कहा गया है कि एक बार यमराज ने यक्ष का रूप धारण करके महाराज युधिष्ठिर के चारों भाइयों को मार डाला। फिर कारणवश इनसे कहा कि चारों भाइयों में से जिस एक को यह चाहें जीवन मांग लें। उस समय इनका राज्य छूट चुका था और उसके फिर पाने की आशा केवल अर्जुन पर अवलम्बित थी। तथापि इन्होंने अर्जुन अथवा भीम का भी पुनर्जीवन न मांगकर नकुल का इस कारण मांगा कि जब अपनी माता का बड़ा पुत्र मैं जीवित हूँ, तब यदि मेरा एक ही भाई जी सकता है तो वह मेरी विमाता का बड़ा पुत्र होना चाहिए जिससे दोनों माताओं की सन्तानें स्थिर रहें। धन्य है, इस स्वार्थत्याग एवं न्यायप्रियता को। इस उदारता पर प्रसन्न होकर यमराज ने चारों भाइयों को जिला दिया। रामानुजों के समान युधिष्ठिर के भी भाई जीवन पर्यन्त उनसे अनुरक्त रहे और अन्त में, सभी ने साथ ही साथ हिमालय के हिम में शरीर त्याग दिया। जो कुटुम्ब–नेता अपने कुटुम्ब को उदार एवं प्रेमपूर्ण बनाना चाहे उसको महाराज श्रीराम तथा युधिष्ठिर के पवित्र उदाहरणों का अनुकरण करना चाहिए।

कुटुम्ब को वैमनस्य से बचाने के लिये सबसे बड़ा उपाय स्वातंत्र्य प्रेम है। बहुत लोग जो बड़े उदार–चेता होते हैं प्रायः अपने निकट के सम्बन्धियों से इस कारण रुष्ट हो जाते हैं कि उनकी प्रकृति में तादृश उदारता नहीं है। यदि मैं बड़ा भक्त हूँ तो कोई कारण नहीं है कि मेरा पुत्र भी वैसा ही भक्त हो। यदि मेरा पुत्र अथवा अनुज मेरे समान भक्त अथवा गुणी होवे तो बहुत ही अच्छा है, किन्तु न होने से मुझे तब तक उस पर क्रोध न करना चाहिए, जब तक उसका आचरण मेरे सिद्धान्तों को छोड़कर साधारण जनसमुदाय की दृष्टि से देखने पर भी नीचे न गिरता हो। एक क्षत्रिय महाशय ऐसे धर्मात्मा थे कि दिन में छः घटे पूजन करते और अन्य प्रकार से भी आदर्श उदाहरण दिखलाते थे। वे अपने पुत्र, भतीजों आदि से इस कारण अप्रसन्न थे कि वे हुक्का पीते और मांस खाते थे। इन्हें समझना चाहिए था कि जब अधिकांश क्षत्रिय बालक ऐसा करते हैं, तब उन्हीं के बालकों पर क्यों नहीं बातों के लिये कोई अप्रसन्न हो? सारांश यह है कि अपने कुटुम्बियों से अच्छे आचरण के कारण हमें प्रसन्न होना चाहिए किन्तु जब तक उनके आचरण वस्तुतः बुरे न हों, तब तक अपने आचरणों की तुलना में उनमें भेद अथवा हीनता पाने से हमें

–शेष पृष्ठ सं. 15 पर

www.thearyasamaj.org

जातिभेद और दानधर्म की अंधश्रद्धा

लेखकः बाबू सूरजभान वकील

भारतवर्ष में पास्परिक सहायता के घट जाने के मुख्य कारण दो ही मालूम होते हैं, एक तो जातिभेद, और दूसरा धर्म के विषय में विचारशून्यता या अन्धश्रद्धा का होना। इनके सिवा फिजूलखर्ची और बलवीर्य की घटी आदि भी अनेक कारण हैं कि जिनसे पारस्परिक सहायता का मार्ग बंद हो गया है और स्वार्थ का साम्राज्य फैल गया है। भारत के हिन्दू इस समय करीब तीन हजार जातियों में बँटे हुये हैं और प्रत्येक जाति के लोग अपनी ही अपनी जाति के अन्तर्गत खान-पान तथा विवाह-शादियाँ किया करते हैं-दूसरी जाति से खान-पान या विवाह-शादी करना वे इतना गुरुतर पाप समझते हैं कि भूल से भी किसी दूसरी जाति वाले के हाथ की रोटी खा लेने वाले को जाति से बाहर निकाल देने के सिवा और कुछ उपाय ही नहीं समझते हैं। मानो प्रत्येक जाति के लोग दूसरी जाति के मनुष्यों को मनुष्य ही नहीं समझते हैं और इसी कारण उनसे इतनी घृणा करते हैं कि यदि वे हमारे चौके की धरती को छू दें तो हमारी सारी रसोई ही बिगड़ जाय और अगर हम ऐसी बिगड़ी हुई रसोई खालें तो हम भी ऐसे भ्रष्ट हो जायँ कि कोई हमारे हाथ के छुए चने भी न खाय। जातिभेद की इस खींचतान से अन्य जाति के मनुष्यों से एक प्रकार का द्वेषभाव हो जाता है और यदि द्वेष भाव न भी हो तो घृणा अवश्य ही हो जाती है। ऐसी दशा में परस्पर सहानुभूति रखना, सहायता करना और एक दूसरे के काम आना प्रायः असंभव-सा हो जाता है। यहाँ प्रत्येक जाति का पेशा जुदा-जुदा रहता है, इस कारण प्रत्येक नगर और ग्राम में अनेक जातियों का होना जरूरी हो गया है। इनसे परस्पर काम तो सब लेते हैं, परन्तु जातिभेद के कारण एक दूसरे को बिलकुल ही गैर समझते हैं और इसीलिए उनमें पारस्परिक सहानुभूति तथा सहायता का व्यवहार नहीं रहता है, सब लोग अपना-अपना काम निकालने और अपना-अपना स्वार्थ साधने की ही फिकर में मस्त रहते हैं।

इस जातिभेद ने भारत को पारस्परिक सहायता से ही वंचित नहीं कर दिया है, बल्कि विचारशून्यता और आपस के कलह को भी उत्तेजन दिया है। इसके फल से उच्च जातीय हिन्दू चमार प्रभृति नीच जातीय किन्तु प्रतिदिन काम में आने वाली हिन्दू जातियों से यहाँ तक द्वेष करते हैं कि उनको अपने कुओं से पानी तक नहीं भरने देते हैं, परन्तु जब वे ही लोग हिन्दू धर्म छोड़कर मुसलमान या ईसाई बन जाते हैं तो फिर चाहे वे अपना पहला पेशा करते रहें या उससे भी अधिक घृणित धंधा करने लगें तो भी हमारे हिन्दू भाई उनसे उतना द्वेष नहीं रखते हैं, अर्थात् इस दशा में उनको कुंए से पानी भर लेने देते हैं और उनको अपने पास भी बिठाने लगते हैं। फल इसका यह हुआ है कि इन नीच जातियों के लाखों-करोड़ों आदमी ईसाई तथा मुसलमान हो जाते हैं और इस प्रकार वे पशुओं से गई बीती दशा से मुक्त होकर मनुष्यकोटि में आ

www.thearyasamaj.org

जाते हैं। सच तो यह है कि भारत को इस जाति भेद ने ही गारत किया है और उसे एक-एक सुई के लिए दूसरों का मुहताज बना दिया है। यही नहीं उसने पारस्परिक सहानुभूति और सहायतारूपी रत्न को छीनकर भारतवासियों को पशुकोटि में लाकर खड़ा कर दिया है। अतएव जब तक यह जातिभेद दूर न होगा तब तक न तो यहाँ पूर्णोन्नति ही हो सकती है और न पारस्परिक सहायता या आपस में मिलजुल कर काम करने की प्रवृत्ति ही पैदा हो सकती है।

अब रही धर्म में विचारशून्यता या अन्धश्रद्धा की बात, सो इसका क्या पूछना है। इसने तो गजब ढाया है और मनुष्यों को जैसा कुछ पागल या उन्मत्त बना दिया है उसका वर्णन नहीं हो सकता है। अन्य विषयों में इसके कारण जो-जो खराबियाँ पैदा हुई हैं और इसने मनुष्यबुद्धि को जैसा जड़ बना दिया है उसका तो कहना ही क्या है? एक परोपकार और पारस्परिक सहायता के विषय में ही देख लीजिए कि लोगों की विचारशून्यता या अंधश्रद्धा ने उसे यहाँ तक बिगाड़ डाला है कि प्रथम तो देने ही का नाम दान रख दिया है और वह क्यों देना चाहिए, किसे देना चाहिए, कब देना चाहिए और क्या देना चाहिए? इत्यादि बातों के विचार को अधर्म ठहरा दिया है। अर्थात् माँगनेवाले को आँख मीचकर देना ही दान हो गया है। फल इसका यह हुआ कि अनेक संडे मुसंडे लोग जो भलीभाँति कमाकर खा सकते हैं और सब कुछ कर सकते हैं, वे भी माँगने लग गये हैं और अनेक रूप दिखाकर, अनेक प्रकार की बातें बनाकर, बल्कि कभी-कभी डरा धमका कर भी सब तरह का दान ले जाते और मौज उड़ाते हैं। हमारे घरों के दान का अधिकांश भाग ऐसे ही लोग खा जाते हैं और बेचारे अनाथों तथा अपाहिजों के लिए कुछ नहीं बचता है, इसीलिए वे बेचारे विदेशियों द्वारा पाले जाते हैं और अपने धर्म को त्यागकर उन्हीं जैसे बन जाते हैं। परन्तु विचारशून्यता के कारण भारतवासियों को इससे कुछ भी लाज नहीं आती है।

इन अन्धश्रद्धालुओं से यदि यह कहा जाता है कि आँख मींचकर दिया हुआ दान बहुत से दुराचारी ले जाते हैं और कुकर्म में लगाते हैं जिससे कुकर्म का प्रचार होता है और साथ ही देश का भी सत्यानाश होता है, तो वे लोग इसका उत्तर देते हैं कि "हमें तो देने से पुण्य की ही प्राप्ति होती है, फिर वे उसे चाहे कुकर्म में लगावें या सुकर्म में। क्योंकि हम दुनिया के ठेकेदार तो हैं ही नहीं, जो इन बातों को देखें और उनके सुकर्मों अथवा कुकर्मों का पता लगाते फिरें।" इन लोगों के इस प्रकार के जबाब से साफ जाहिर होता है कि दान के द्वारा पुण्य प्राप्ति के शौक या लालच ने इनके हृदय से दया धर्म और परोपकार के भाव को बिलकुल निकाल डाला है और उन्हें ऐसा कठोर बना दिया है कि चाहे सारी दुनिया डूब जाय, या कैसी ही खराबी फैल जाय परन्तु उन्हें पुण्य की प्राप्ति हो जाय, जो कि ऐसी अवस्था में होना बिलकुल असंभव है। पुण्य पाप के स्वरूप और उसकी प्राप्ति के कारणों को जरा भी न समझकर ये अंधश्रद्धालु कभी-कभी दान का ढोंग भी किया करते हैं, अर्थात् जब कोई बीमार हो जाता है या भारी संकट में फँस जाता है, तब उसके हाथ का स्पर्श कराके उसके नाम से कुछ अनाज या द्रव्य बँटवाते हैं और ऐसा करके वे उस बीमारी या संकट के हट जाने की आशा करने लगते हैं। इसी प्रकार कई अन्य अवसरों पर भी दान

www.thearyasamaj.org

का ढोंग रचकर उससे अपने को महान् पुण्यशाली जानते या उससे बड़े-बड़े कामों की सिद्धि की वाट जोहने लगते हैं।

दान देने के ऐसे-ऐसे अनोखे व्यवहारों से परमार्थ, परोपकार, दयालुता, निष्कामसेवा और पारस्परिक सहानुभूति तथा सहायता का खयाल भारतवासियों के हृदय से हट गया है और उसकी जगह स्वार्थ ने अपना अड्डा जमा लिया है। उक्त सिद्धान्तों के माननेवाले अंधश्रद्धालु अपने सुख-शान्ति के दिनों में एक पैसा भी दान में नहीं देते हैं और यही समझे बैठे रहते हैं कि जरूरत पड़ने पर हम सब कुछ दान कर लेंगे। इसके सिवा जब कभी इन लोगों के मन में आगे के लिए पुण्य संचय का खयाल आता है और वे कुंआ, बावड़ी, धर्मशाला या देवमन्दिर आदि सार्वजनिक कामों में द्रव्य लगाते हैं तो उस समय भी उनके हृदय में सार्वजनिक हित या परोपकार का खयाल नाम मात्र को भी नहीं रहता है, वरन् ऐसे कामों को वे पुण्य प्राप्ति का जरिया समझकर ही किया करते हैं। ये लोग बिना जरूरत के भी इन कामों को बनवाते और उन पर चूने का प्लास्टर कराने में और रंग बिरंगे बेल-बूटे खिंचवाने में लाखों रुपया उड़ा देते हैं। यदि इन लोगों से कहा जाय कि आप जिस ग्राम, नगर, गली या मुहल्ले में यह धर्मशाला, मन्दिर अथवा कुंआ बनवा रहे हैं, वहाँ तो पहले ही जरूरत से ज्यादा बने हुए हैं और जितना रुपया आप प्लास्टर और पच्चीकारी में लगा रहे हैं उनसे और भी कई उत्तम कार्य हो सकते हैं, तो वे निःसंकोच उत्तर दे देते हैं कि हमको जरूरत गैरजरूरत या उपकार या अपकार से क्या मतलब है? हमें तो पुण्य चाहिए, सो इस मन्दिर के बनवाने या कुंए के खुदवाने से मिल जायगा। जितना रुपया लगावेंगे उतना ही पुण्य मिलेगा। ऐसी अंधश्रद्धा से बड़ा अनर्थ हो रहा है। यद्यपि इस समय भी लाखों-करोड़ों रुपयों का दान होता है, विचारशून्यता के कारण वह प्रायः व्यर्थ ही जाता है। आजकल इन महादानी धनाढयों के कोष में देश के बच्चों के पढ़ाने लिखाने के लिए धन नहीं है। ये सब कार्य इस देश में प्रायः विदेशियों द्वारा ही सम्पन्न हुआ करते हैं। यदि भारत के इन पुण्यात्मा अंधश्रद्धालुओं को ऐसी श्रद्धा हो जाय कि इन कार्यों के करने से भी पुण्य की प्राप्ति होती है तो वे दान के लिए निकाला हुआ रुपया आँख मींचकर इन्हीं कामों में खर्च करने लगें और जरूरत बेजरूरत गली-गली अनाथालय, स्कूल, कालेज आदि बनवाकर इन कामों की कभी भी मिट्टी खराब नहीं करेंगे। कहने का मतलब यह है कि जब तक विचार से काम नहीं लिया जायगा और कार्य-कारण के सम्बन्ध को खोजे बिना ही आँख मींचकर किसी सिद्धान्त पर विश्वास कर लिया जायगा, तब तक पारस्परिक सहायता और सहानुभूति का खयाल हृदय में नहीं आयगा और जब तक स्वार्थ का भूत हमारे सिर पर सवार रहकर हमसे उलटे सुलटे कार्य कराता रहेगा तब तक हमको दुःख ही दुःख मिलता रहेगा। सुखप्राप्ति की कुछ भी आशा न बँध सकेगी।

हरिद्वार के पास जो ऋषिकेश तीर्थस्थान है वहाँ सदैव हजारों साधु और भिक्षुक आते जाते रहते हैं और महीनों वहीं निवास करते हैं। भारत के धनाढयों की तरफ से वहाँ अनेक दानशालायें बनी हुई हैं जो क्षेत्र (अन्नसत्र) के नाम से प्रसिद्ध हैं। सुना जाता है कि किसी क्षेत्र से चार-चार और किसी से दो-दो

www.thearyasamaj.org

रोटियाँ प्रत्येक साधु को मिलती हैं और इस प्रकार इनके पास प्रतिदिन इतनी रोटियाँ जमा हो जाती हैं कि ये उन्हें किसी प्रकार नहीं खा सकते हैं, अतः शेष रोटियों को अपनी गौओं और कुत्तों को खिलाते हैं और यदि उनसे भी बची रहती है तो मछलियों को खिला देते हैं। रोटियों की ऐसी दुर्दशा होने पर भी सुना गया है कि वहाँ और भी कई क्षेत्र खुलने वाले हैं, जिनके द्वारा और भी अधिक रोटियाँ उनको मिलने लगेगीं। जो अन्न भारत के लाखों करोड़ों मनुष्यों के पेट भरने के लिए नहीं मिलता है वही इन धर्मक्षेत्रों में मारा-मारा फिरता और पशुओं को खिलाया जाता है। इन सब बातों से साफ जाहिर होता है कि भारत के ये दानी लोग उपकार के लिए ये क्षेत्र नहीं खोलते हैं। अगर गरीबों के हित के लिए खोलते तो जब वहाँ इतने क्षेत्र खुल चुके हैं कि जिनसे साधुओं को भरपेट भोजन मिलने के सिवा बहुत-सा पड़ा रहता है तो वहाँ बेजरूरत और क्षेत्र खुलवा कर अन्न को बरवाद करके अन्य मनुष्यों को भूखों न मारते। किन्तु इनको न तो इन साधुओं के हित का खयाल है और न भारत के अन्य मनुष्यों की ही परवाह है, वरन् इनको तो यही विश्वास है कि ऋषिकेश में क्षेत्र चलाने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। इसीलिए वे वहाँ आँख मींचकर रोटियाँ बँटवाते हैं और पुण्य कमाते हैं। चाहे किसी को रोटियों की जरूरत हो या न हो, चाहे वे रोटियाँ साधुओं के पेट में जायँ या कुत्ते, बिल्लियाँ खायँ; इसका उन्हें कुछ खयाल नहीं है। देश में सदा अकाल पड़ा रहता है, अन्न के अभाव से लाखों करोड़ों आदमी भूखों मरते हैं, ऐसी हालत में उक्त क्षेत्र में जरूरत से ज्यादा अन्न क्यों खर्च किया जाय, इसकी उन्हें कुछ परवाह नहीं है। उन्हें तो केवल अपनी अंधश्रद्धा और पुण्य-संचय से काम है, न कि देशहित या परोपकार से।

इस प्रकार इन अन्धश्रद्धालु भारतवासियों की कृपा से इस समय 60 लाख साधु मौज उड़ाते फिरते हैं, मिश्री बादाम घुटवाते हैं, भंग छनवाते हैं, गाँजे का दम उड़ाते हैं, हलुवा और मालपुए बनवाते हैं, गद्दी, तकिया लगाते हैं, साहूकारी करते हैं, हाथी, घोड़े रखते हैं और सब तरह के कुकर्मों के ठेकेदार बने हुए हैं। यद्यपि ये अंधश्रद्धालु इस बात को भलीभाँति जानते हैं कि इन 60 लाख साधुओं में बहुत से महापाखंडी और ठग भी शामिल हैं, तो भी आँख मींचकर इनकी सेवा किया करते हैं और उन्हें खूब मेवा मिष्टान्न खिलाते हैं। क्योंकि उनको साधुओं का उपकार नहीं करना है, जो वे भले बुरे और सच्चे झूठे साधु की पहिचान करते फिरें, बल्कि वे साधुवेश की पूजा करने में ही पुण्य समझते हैं, इसलिए जो कोई साधु सामने आ जाता है उसी की पूजा और आव-भगत करके पुण्य कमा लेते हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि साधुओं के अशीष से गृहस्थ के सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं और उनके शाप से सर्वनाश हो जाता है। इसीलिए वे साधुमात्र की सेवा करते हैं और भंग, चरस आदि भेंट देकर उनसे आशीर्वाद ग्रहण करते हैं। यद्यपि इन चीजों का सेवन करना स्वयं बुरा और हानिकारक समझते हैं, परन्तु उनको भय लगा रहा है कि कहीं ऐसा न हो कि इन्कार करने से महात्माजी नाराज हो जायँ और हमारी शामत आ जावे।

मतलब यह है कि इन साधु-सन्तों की सेवा करने में भी उक्त दाताओं के हृदय में स्वार्थ के सिवा

-शेष पृष्ठ सं.20 पर

www.thearyasamaj.org

आज्ञा पालन

लेखकः डॉ0 गोकुलचन्द नारंग

जब तक बच्चे के दांत न निकलें, उसे माता का दूध पिलाना चाहिये। जितने दिनों तक माता स्वपुत्र को दुग्धपान करावे। उतने दिनों तक माता कसीली, कड़वी और विषैली वस्तुओं को कदापि सेवन न करे। खूब पेट भर कर न खाना चाहिये। नींद भर कर सोना चाहिये किन्तु इतना कार्य न करना चाहिये, कि जिससे वह थक जावे। इन सारी बातों का असर दूध पर और फिर बच्चे पर पड़ता है। दांत निकल आने पर बालक को नर्म, खुराक, फल इत्यादि। नर्म और स्वादिष्ट वस्तुयें खिलानी चाहियें।

बालक जब घुटनों से चलने लगे तो रास्ते में मोटा कपड़ा बिछा देना चाहिये। पास की ऐसी वस्तुओं को हटा देना चाहिये कि जिनके कारण बालकों की हानि हो सकती है। प्रायः देखा जाता है, कि बालक को उसका बड़ा भाई अथवा बहिन जो खुद भी बालक ही होते हैं खिलाते फिरते हैं। इससे दो हानियां हैं। प्रथम तो वह भाई या बहिन जो बालक को गोद भरे खिलाया करते हैं शारीरिक उन्नति खो बैठते हैं वह स्वयं उनका बोझा सरलता पूर्वक नहीं संभाल सकते कि जितना उनको मजबूरन उठाना पड़ता है। द्वितीय वह बालक को इस प्रकार कसकर पकड़े या गोद लिये रहते हैं कि जिससे बालकों को हानि पहुंचती है। इस समय यदि बालक रेंगता है, तो उसे रेंगने दो। खड़े होकर गिरता है तो गिरने दो। हां, उसकी देख रेख अवश्य रक्खो और वह गुदगुदे बिछौने पर रहेंगे।

कोई-2 बच्चे को चलाने के लिये बनावटी उपाय करते हैं। जैसे रेल के खिलोने को चाबी भरकर छोड़ देते हैं और बच्चे से कहते हैं कि जाओ पकड़ लाओ। यह भी हानिकारक क्रिया है। जिस समय बच्चे में शक्ति आ जायगी उस समय वह स्वयं चलेगा। थोड़ी शक्ति का ऐसा दुरुपयोग न करना चाहिये। बच्चे की अवस्था का प्रथम वर्ष बड़ा लाभदायक होता है। उस समय उसकी स्मरण शक्ति बड़ी तीव्र होती है। वह अपनी आस-पास की वस्तुयें पहचान लिया करता है। इसी अवसर पर उसे और विषय नहीं किन्तु आज्ञा पालन का विषय अवश्य सिखाना चाहिये। बच्चा पांच वर्ष के पहले किसी आज्ञा का अर्थ नहीं समझ सकता। यदि बच्चा दियासलाई मुँह में डालता है, तो उसे कहो कि निकाल डाल, क्यों निकाल डाले, यह मत समझाओ। इससे प्रथम तो वह समझेगा ही नहीं, दूसरे उसका स्वभाव बिगड़ेगा। उसको ऐसी आदत डालो कि वह अपने माता-पिता और गुरु लोगों की आज्ञा बिना किसी अड़चन के स्वीकार कर लिया करे। इस स्थल पर भी बच्चे का होनहार आधारवत समझना चाहिये हां, इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अधिक आज्ञाओं की भरमार न करना चाहिये। अथवा बच्चे की प्रत्येक बात में दखल न देना चाहिये। यदि कहने की बच्चे ने परवाह न की, तो उसे हंसकर उड़ा मत दो। इससे बिगड़ने के ढंग पड़ेंगे। एक बात और है प्रतिकूल आज्ञायें कभी न दो। आज आपने कहा चाकू मत छूना-कल आपने चाकू लाने के लिये कहा,

www.thearyasamaj.org

तो वह आपका भरोसा नहीं करेगा। क्योंकि उस समय भी उसकी आत्मा में इतनी शक्ति होती है कि वह समझता है कि जो बात कही गई है, वह योंही कही गई अथवा वास्तव में ठीक कही गई। उनके हृदय पर यह भाव स्वयं प्रदर्शित हो जाया करता है। यदि बच्चा कुछ दंगा कर रहा हो, तो मां को उसे देख मुख न फेर लेना चाहिये। मां का तो यह मतलब होता है कि बच्चा यह समझे कि उसकी मां ने यह जाना नहीं, यदि जानती तो कभी क्षमा न करती। किन्तु बच्चा असली बात जान लेता है और वह मन में यह विचारता है कि उसकी मां असभ्य है और फिर जब वह किसी बात को करने या न करने के लिये कहती है तो बच्चा समझता है कि वह बकवास अथवा दिल्लगी करती है। उस बात का उस पर उतना प्रभाव नहीं होता कि जितना होना चाहिये। यह भी ध्यान रहे कि मां को क्रोध अथवा हर्ष के आवेश में आकर अपनी आज्ञा में उलट फेर न करना चाहिये। इससे बच्चे के निश्चय में गड़बड़ी पड़ जाती है और इससे वह नहीं जान पाता है कि कौनसी आज्ञा ठीक और कौनसी क्रोध या हर्ष के कारण से है। आपने प्रायः सुना होगा, कि बच्चे कहते हैं, कि आज मां खुश है, चलो मिठाई उड़ायें, या मुन्ना के कान उखाड़ लें। किन्तु यदि मां अप्रसन्न हो, तो बाहर खुली हवा में जाकर खेलने से भी डरने लगते हैं। इन बातों से बच्चे में गम्भीरता नहीं आती। वरन् यह जान लेते हैं, कि "जैसी चले ब्यार पीठ तब तैसी दीजे।" और फिर बड़े होने पर वह माता-पिता की परवाह भी नहीं करते। लोग कहते हैं, कि अंग्रेजी पढ़ने से लड़के माता-पिता की आज्ञा नहीं पालन किया करते। यह उनका भ्रम है, अपराध बच्चों का है अंग्रेजी भाषा का नहीं और माता-पिता ही उनको वैसा बनाते हैं। यही क्यों यदि सन्तान में कुछ भी दोष है, वह सच्चा प्रेमी और आज्ञा पालक नहीं है। स्वदेश प्रेमी, मातृभाषा प्रेमी और कर्तव्यनिष्ठ नहीं है, यदि उसमें मरते दम तक कोई व्यसन लग गया हो तो यह सारे पापों के उत्तर दाता उसके माता-पिता हैं। योग्य माता-पिता, पुत्र के बचपन को अत्यन्त लाभदायक समझते हैं। उस समय कैसा प्रभाव पड़ता है, यह बात ध्रुव और प्रह्लाद आदि की कथाओं से सप्रमाण है।

माता-पिता बच्चे से जो बात कहें गम्भीरता और दृढ़ता के साथ कहें। मुख पर हास्य, क्रोध का भाव न होना चाहिये। मुख पर क्या भाव है? इस बात पर विचार न करके बच्चा स्वयं आज्ञा पालन करना अपना परम धर्म समझें। बच्चे के सन्मुख कभी मिथ्या मत बोलो, बच्चा खुद भी कभी मिथ्या न बोलेगा। मि० गांधी कुछ विद्यार्थियों को पढ़ाया करते हैं, एक दिन एक बच्चे ने कोई ऐसी वस्तु खा ली थी कि जो उसकी मनाकर दी गई थी। सब विद्यार्थियों के सन्मुख पूंछे जाने पर उसने इन्कार किया कि मैंने अमुक वस्तु खाई ही नहीं। मि० गांधी ने यह सुनकर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया और अपने हाथ से अपने ही मुख पर तमाचा मार कहा। तुम्हारा दोष नहीं मेरे सन्मुख यदि तुमको झूठ बोलने की शक्ति है, तो मैं ही झूंठा और दोषी हूं। अतएव दंड मुझको मिलना चाहियें। बच्चा यह सुनते ही चरणों पर गिरकर रोने लगा और प्रतिज्ञा की कि मैं आजन्म कभी भी झूंठ न बोलूंगा। इस घटना के लिखने का यही अभिप्राय है कि कभी मिथ्या मत बोलो। माता-पिता जैसा कार्य करेंगे, बालक वैसा ही अनुकरण करेगा। बालकों को अपने मन

www.thearyasamaj.org

बहलाव की वस्तु मत समझो। उनको "मनुष्यों का पिता" समझो। उनको इस विस्तृत और विचित्र संसार में जीवन निर्वाह करना है, यह समझ उनको इस योग्य बनाओ कि वह सीधी सड़क चले जायं, ठोकरें खा-खाकर आपको आशीर्वाद न दें। एक अंग्रेज कवि ने कहा है। "बालक पैदा करना सरल है, पर उसे पुत्र कहना बड़ा कठिन है।"

ज्यों ही, बालक में समझ आवे, उसे अच्छी-2 शिक्षाएँ दो। यदि वह एक धनी माता-पिता की सन्तान है तो उसे सबसे प्रथम यह सिखलाओ कि अन्य गरीब भी उसी की तरह जीवधारी हैं। बालक के हृदय से गरीबों को प्रीति प्रेम करना चाहिये।

उस समय जरा सी असावधानी में, वह अभिमानी हो जायेंगे। पराए धन को मिट्‌टी समझो, अपनी बात को स्मरण रक्खो और पूर्ण करो। संसार क्या है, और उसमें वह किस प्रकार कुशलपूर्वक रह सकता है आदि-2 समुचित और आवश्यक शिक्षायें उसे याद करादो और वह कंठ को ही नहीं हाथों को, और हृदय को भी।

बाहर से जब कोई अतिथि आवे, तो उसके सत्कार के लिए बालक ही को नियुक्त करो। उसे ईश्वरभक्त, गुरुभक्त, और देशभक्त बनाओ। रुपये को सब कुछ समझने वाला स्वार्थी न हो जाय। ऐसी बातों पर माता-पिता को सदैव ध्यान रखना चाहिये। उसे ऐसी कहानियां सुनाई जायं जिससे वह एक न एक नई शिक्षा सदैव ही सीखता रहे। भूत आदि डरावनी बातें मत कहो। मातायें अक्सर सुलाने के लिए कहा करतीं हैं कि 'लल्ला सो जावो, द्वार पर कनकटा खड़ा है" इससे वह कभी तीर मारखां न हो सकेंगे। इस समय ठोकर पर ठोकर लगने से भी जो देश कान मूंदे बैठा है, उसका श्रेय हमारी कुमाताओं ही पर है। अस्तु, बतला आया हूँ, कि लड़कपन की बात सर्वदा प्रभावशालिनी हुआ करती हैं। अतः बचपन की आयु एक विचित्र पौधे की भांति है कि जिसको माली आधी रात्रि को उठकर सींचा करता है।

याद रखिए, जो बालक यह सब सात्विक पाठ नहीं पढ़ेगा तो वह बिना पढ़े रह न सकेगा। क्योंकि संसार उसे धक्का दे देकर सिखलावेगा। इस संसार में कोई मनुष्य इस प्रकार की अनुचित स्वतंत्रता और झूंठे अभिमान से रह नहीं सकता कि जो प्रकृति के नियम में नही हैं। दूसरे की वस्तुओं को मत तोड़ने दो। अभी वह वस्तुयें ही तोड़ता है, जवानी में वह दिलों को तोड़ेगा और जो इस समय आपके मनोविनोद का कारण है, तो वह रोदन का कारण बनेगा।

बालक की बात सुनकर हँसना नहीं चाहिये। उसके तोतले वचन इस समय मीठे मालूम पड़ते हैं, किन्तु जब तोतलापन चला जाता है, तो वह मीठापन ऐसे कड़वेपन से बदल जाता है कि जो विष से भी अधिक दुखद होता है। बालक को मुहल्ले के गरीब बालकों को मारता देख आँखें न चुरानी चाहियें इन्हीं बातों से ऐसे मनुष्य पैदा होते हैं कि जो भाई का रक्त स्वाद से पीते हैं।

वरन् बालक को अवकाश देते रहना चाहिये, कि जिससे उसकी आत्मा अच्छे कर्मों की ओर लगाव करे। मान लो उसका भाई बीमार है, उससे कहो कि शोर न करे और उसकी सेवा करे। आज यह

www.thearyasamaj.org

पाठ पढ़ाओ। कल मुहल्ले के किसी गरीब बीमार के पास उस पाठ को याद करने के लिये भेजो। इससे उसके हृदय में सेवा भाव जाग्रत होगा। अथवा माता थककर सो रही है। उस समय बालक को कोई ऐसी चेष्टा न करनी चाहिये कि जिससे माता की नींद उचट जाय। सो चुकने पर माता को पुत्र की पीठ ठोंक आशीर्वाद देना चाहिये। बालक को जहाँ बुरी बातों का फल मार पीटकर झिड़क मालूम हो वहीं अच्छे कर्म का फल भी आशीर्वाद पारितोषिक मिलना चाहिये।

कहते हैं कि इकलौते बालक अधिक लाड़ प्यार से पाले जाते हैं। प्रश्न के उत्तर में कहते हैं, कि भाई एक ही सन्तान है। पूछना तो यह है कि एक ही सन्तान है, तो अपने नाम को क्या मिटा दोगे अधिक होती तो यह बात थी, कि एक खराब हो जाय तो कोई बात नहीं। उनकी देवताओं की तरह पूजा न करो क्योंकि उसका प्रतिफल उसको प्रजा के रूप में कभी न मिलेगा।

यदि अधिक बालक हों तो वहां अच्छी और बुरी बातें शीघ्र ही आ जाती हैं। बड़े भाइयों ने छोटे भाइयों से यदि उनकी वस्तुयें छीन लीं उनको पीटा और उनकी पुस्तक फाड़ फेंकी। तो समझ लो कि बुरी बातों का सबक छोटों पर है। छोटे और नहीं, तो क्रोध में आकर बड़े भाई को काट ही खाते हैं। छोटों को बड़े भाइयों की सेवा, बड़ों को छोटे भाइयों पर कृपा करना सिखलानी चाहिये, ऐसा करने से राम, लक्ष्मण की तरह बन्धु प्रेम पुनः दर्शनों को मिल सकता है। घर संसार का एक छोटा नमूना है। घर ही में यदि पुत्र कुशलता से रहता है यदि उससे घर प्रसन्न है, तो संसार भी प्रसन्न होगा। यदि घर का नाक में दम है, तो संसार का नहीं (क्योंकि घर की भांति संसार उसकी अपेक्षा नहीं करता) उसी का रहना असम्भव हो जायगा।

कई एक बालकों के होते हुये किसी एक बालक से अधिक प्रेम करना अच्छा नहीं। सभी के साथ एक सा व्यवहार रक्खो। इस से प्रेम कराने वाला ढीठ और घमंडी और अन्य टूटे दिल के हो जायेंगे। अधिकतर छोटे बालकों की ओर दृष्टि रक्खो, क्योंकि ऐसी अवस्था में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत है।

प्रायः ऐसे मनुष्य देखे जाते हैं, कि अन्य बाहरी आदमियों के साथ वह लोग बड़ी सभ्यता प्रगट करते हैं। किन्तु अपने दोस्तों में बड़ी धूर्तता और असभ्यता प्रगट किया करते हैं। बात यह है कि उन्होंने बचपन में असभ्यता का पाठ पढ़ा है और अब संसार ने उन्हें कुछ बनावटी सभ्यता सिखलाई है। ❁❁❁

पृष्ठ सं. 7 का शेष–

विक्रमादित्य की भांति पुंत्र प्रतापादित्य पर पक्षी–वध के लिये वैष्णवता–विच्छेद के विचार से आपे के बाहर न होना चाहिए। सहिष्णुता कौटुम्बिक जीवन के लिये प्रेम ही के समान आवश्यक है। हम अपने विचार औरों पर प्रकाश करके उन्हें अपने मत पर लाने का प्रयत्न भले ही करें किन्तु उनके लिये इतना आग्रह न करें कि दूसरों का बैठना कठिन हो जाय। अतः आदर्श कौटुम्बिक जीवन के लिये प्रेम, सहिष्णुता, स्वतंत्रता, क्षमा, क्रोधाभाव और न्याय की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जो इन बातों को ध्यान में रक्खेगा, उसका कुटुम्ब अवश्य स्वर्गोपम होगा। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

गतांक से आगे–

ऋषि दयानन्द सरस्वती

का जीवन चरित्र

रचयिताः परम ऋषिभक्त पुरुषोत्तमदास, मथुरा

उत्सव पाणि–ग्रहण को रहा शेष एक मास।
सभी समुद साधन जुटें केवल मूल उदास।।

सबको विवाह के देखन की उत्कण्ठा लगी हुई भारी।
थे मातु पितु दोनों उत्सुक हो कौन दिवस वह शुभकारी॥
सब छोटे–बड़े बन्धु–बान्धव और इष्ट मित्र हरषाय रहे।
सारा परिवार हर्ष विह्वल बस दयानन्द मुरझाय रहे॥
चिन्ता ज्वाला उर धधक रही सब देख रहे पहचान रहे।
यह लाली है सन्ध्या समान जाग्रत मन से यह जान रहे॥
सूर्य के अस्त हो जाते ही छा जाये जैसे अंधियारी।
यह प्रसन्नता थोड़े दिन की छायेगी शोक–घटा कारी॥

दे वासना–समूह की पूर्णाहुति वह आज।
छोड़ चले परिवार लघु पाने अक्षय राज।।

छोटे से मानव प्राणों में भर विश्व वेदना अति भारी।
चल पड़ा विराग ज्योति लेकर एकरात्रि युवक शोभाधारी॥
उसने देखा मनु–पुत्र आज निज अन्तर में अभिशाप लिये।
तजकर जीवन का चरम लक्ष्य दुर्बुद्धि जन्य सन्ताप लिये॥
देखा उसने है कथित ज्ञान शोषण का साधन बना हुआ।
देखा उसने प्राणापहरण है देवाराधन बना हुआ॥
शिवरात्रि घटित मूषक घटना उनके नयनों में नाच रही।
चाचा भगिनी की दुःखद मृत्यु उनके भावों में छाय रही॥

सच्चे शिव की खोज और मृत्यु–विजय की साध।
चला तरुण के लक्ष्य दो भर विश्वास अगाध।।

www.thearyasamaj.org

आजन्म प्रेम अनुराग सभी पल भर में सबसे तोड़ दिया।
तज दिये भोग सुख के साधन ईश्वर से नाता जोड़ लिया॥
सूर्य के उदय से पहले ही पूरे छः कोस निकल आये।
था बीस कोस पर ग्राम एक दिन ढलते वहाँ पहुँच पाये॥
उत दिन निकला, नहिं पुत्र मिला माता ने मन में जान लिया।
गया निकल आज घर से बेटा पहिली बातों पर ध्यान दिया॥
जल बिन ज्यों मीन तड़पती है त्यों माता व्याकुल होती है।
खाकर पछाड़ गिर पड़ी धरनि आँसुओं से मुखड़ा धोती है॥

पितृ हृदय व्याकुल अमित मातु रही विलखाय।
परिजन पुरजन चतुर्दिक हाहाकार दिखाय।।

सारा विवाह का ठाट बाट सूना फीका दिखलाने लगा।
रंग में भंग क्या हुआ अहो सरसब्ज बाग मुरझाने लगा॥
अन्वेषण कार्य किया जारी झट घुड़ सवार दौड़ाये हैं।
जहाँ जाने की आंशका थी वे सभी ठाँव दिखलाये हैं॥
पर सभी यत्न निष्फल लखकर आखिर को यह प्रयास त्यागा।
वह राज हंस नहिं हाथ लगा जो पिंजड़ा छोड़ निकल भागा॥
भय ग्रस्त मूल जी सरल मार्ग तज टेढ़े पथ पर चलते थे।
परिचित न कहीं मिल जाय कोई ऐसे विचार से बढ़ते थे॥

साधु वेश में चार ठग मिले इन्हें एक बार।
बैठे थे रख मूर्ति एक पैनी दृष्टि पसार।।

रोका इनको मृदु वाणी में लिया अपने पास बुला करके।
सब भेद हृदय का जान लिया बातों में ही फुसला करके॥
सब वृत्तान्त जान बोले–भोले! वैराग्य सिद्ध यों नहीं होता।
वैराग्य मार्ग अति दुष्कर है लगता इसमें गहरा गोता॥
अंगुली में जो मुद्रा पहने अर्पण करदी मूर्ती आगे।
एक तो पुण्य दूसरे सिद्धि सब काज सरे ममता त्यागे॥
ठग वृन्द के चक्कर में आकर मुद्रा दे आगे चल दीने।
'सामले' ग्राम में पहुँच गये मन में पीड़ा चिन्ता लीने॥
ब्रह्मचारी वहां पर एक मिले निज परामर्श बतलाया है।
'काषाय वस्त्र धारण कर लो' यह तत्व मूल मन भाया है॥

www.thearyasamaj.org

दीक्षा देकर रख दिया नाम शुद्ध चैतन्य।
हुए साधु सेवा निरत होकर परम अनन्य।।

कुछ दिन में ही अनुभव कीना कामना यहाँ न पूर्ण होगी।
जीवन की लक्ष्य-विभा शोभन निश्चय से यहाँ चूर्ण होगी॥
आते ही उर में यह विचारे सब तुरन्त वहाँ से गमन किया।
शिव दर्शन की लौ लगी हुई, सब विधि मन को था दमन किया॥
गुजरात प्रान्त के अन्तर्गत है गाँव काँगड़ा एक छोटा।
कुछ 'वैरागी' वहाँ पर रहते जो काम करें भारी खोटा॥
विधवा थी एक फंसा रक्खी, इनको भी लगे फंसाने में।
रेशमी वस्त्र में इन्हें देख, सब लागे हंसी उड़ाने में॥

फेंक रेशमी वस्त्र को सादा लीने धार।
गैल सिद्धपुर की गही मेला जहाँ अपार।।

सम्भव है योगीराज कोई वहां मिलें कृपा उनकी पाऊं।
'दीपक से दीपक जलने' की यह उक्ति सार्थक कर पाऊं॥
इन भावों में तल्लीन हुए मन माँहि सोचते जाते हैं।
बस इसी बीच निज ग्राम-बन्धु मार्ग में एक मिल जाते हैं॥
चिरसेन हिं वृत्त मिला कोई निज गृह और बन्धु-बान्धवों का।
स्नेह मूर्ति पितु-माता का, पुरवासी सभ्य साधवों का॥
हृदय का भाव उमड़ करके आँखों की राह लगा बहने।
सब दृश्य पुराने याद पड़े मानो हों वे मोहक सपने॥

वहुत दिनों से ग्राम का अपना मिला न कोय।
स्व-स्नेही लख आज यह दीने टप-टप रोय।।

चूं पड़े नेत्र स्नेह-धार में जी भरकर स्नान किया।
पर तभी 'शुद्ध चैतन्य' हृदय निज नव चेतन आधान किया॥
गृह कुशल कहानी सुन करके निज बिरह-कथा को बतलाया।
गृह त्याग महान् अनर्थ किया यों ग्राम-बन्धु ने समझाया॥
यह बाल-दीक्षा महापाप यदि मन को वश में किया नहीं।
यौवन की इस उद्दाम दीप्ति को ध्येय समर्पित किया नहीं॥
धोबी के कुत्ते की नाईं घर का न घाट का रहता है।
वन में जाकर भी जो पामर विषयों की ध्वनि ही सुनता है॥

www.thearyasamaj.org

गृहधर्म न बन्धन, मोक्ष मार्ग, शास्त्रोक्त, राष्ट्र मंगलकारी।
लौटो उनके आँसू पोंछो, हैं बिलख रहे पितु महतारी॥

माता पिता सेवा महद् प्रजा–सृजन सद्धर्म।
केवल निज हित पाप है, गृह त्यागन का कर्म।।
शान्त हृदय चैतन्य मन कहा शुद्ध चैतन्य।
शास्त्र विहित उपदेश से हुआ स्वयं मैं धन्य।।

पर मैंने नहिं गृह त्याग किया पितु मातु को दुःख दिखाने को।
गृह त्यागा है मैंने जग में उनकी यश छवि के छाने को॥
गृह त्यागा नहिं मैंने भाई एकाकी मौज मनाने को।
आलसी प्रमादी बनकर के कुछ मुफ्त का माल उड़ाने को॥
गृह त्यागा है मैंने भाई दुखियों के दुःख मिटाने को।
आश्रय–हीनों को नेह दान, बिछुड़ों को गले लगाने को॥
गृह त्यागा नहिं मैंने भाई पूजा पाखण्ड रचाने को।
सुलफा और चरस उड़ाने को वैराग्य का वेष लजाने को॥
गृह त्यागा है मैंने भाई सबको सन्मार्ग बताने को।
जग से भ्रम–भूत भगाने को, सच्चे शिव–दर्शन पाने को॥

जग हित व्रत मेरा कठिन नहीं स्वार्थ का लेश।
यौवन धन–जन मूल्य पर जीवित हो प्रिय देश।।

इसलिये विदाई दो मुझको अब ग्राम सिद्धपुर है जाना।
कर जोड़ विनय यह करता हूँ मत माता–पिता को बतलाना॥
चल दिये शुद्ध चैतन्य तुरत ग्रामानुग्राम विचरण कीना।
कुछ कालान्तर में जा पहुंचे विश्राम सिद्धपुर में लाना॥
वहाँ नीलकण्ठ के मन्दिर में शुभ आसन जाकर जमा दिया।
पहिले ही जहाँ कुछ ब्रह्मचारी दण्डी स्वामियों ने वास किया॥
उन समीप वासी सन्तों का सत्संग नित्य प्रति करते थे।
सत्संग–तृषा की तृप्ति हेतु मेले में विचरण करते थे॥

–(शेष अगले अंक में)

सत्साहित्य का प्रचार–प्रसार राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

www.thearyasamaj.org

पृष्ठ सं. 11 का शेष–

परोपकार का भाव जागरित नहीं होता है। पुराणों से पता चलता है कि अनेक राजालोग अच्छे साधुओं को भोजन–दान देने से अधिक पुण्य मिलने की आशा से ऐसा प्रबन्ध करते थे। जिससे उनके सिवा और कोई मनुष्य उस साधु को भोजन न दे सके और वह लाचार होकर भोजन करने के लिए राजा ही के दरवाजे पर आवे। यद्यपि ऐसे प्रबन्ध से साधुओं को बहुत कष्ट उठाना पड़ता था, परन्तु इससे राजा को अधिक पुण्य मिलने की सुविधा हो जाती थी और इसीलिए वह इस पुण्यप्राप्ति की छीना–झपटी में बलात्कार से भी काम लेने में नहीं चूकता था। इस प्रकार इस पुण्यप्राप्ति की अंधश्रद्धा ने दयाधर्म, परोपकार, निष्कामसेवा और पारस्परिक सहायता की जड़ उखाड़ डाली है। अब भारतवासियों की बात–बात में स्वार्थ घुस गया है, जिसका दूर होना मनुष्य–सुखच के लिए बहुत जरूरी है। क्योंकि पारस्परिक सहायता और निष्काम सेवा के बिना न तो मनुष्य का जीवन–निर्वाह ही हो सकता है और न वह वास्तव में मनुष्य ही बन सकता है। ❀❀❀

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन–जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/– एक सौ पचास रूपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/– एक हजार पाँच सौ रूपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठायें।

हम आपको वार्षिक विशेषांक सहित पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार–प्रसार भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

–धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या–

इण्डियन ओवरसीज बैंक
शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा
I F SC Code- I OB A 0001441 ***'सत्य प्रकाशन'*** *खाता संख्या– 144101000002341*

सबसे प्रेम करो

आपको बुराई के बदले बुराई नहीं करनी चाहिए और आंख के बदले आंख या दांत के बदले दांत नहीं तोड़ना चाहिए। आप को हर किसी के साथ प्रेम करना चाहिए। अगर मनुष्य आपको अपना शत्रु समझते हैं तब भी आपको उनसे प्रेम करना चाहिए और उनके कल्याण की कामना करनी चाहिए। सारे मनुष्य एक ही पिता के पुत्र हैं, सब भाई भाई हैं और इसलिए आपको हर एक से प्रेम करना चाहिए। प्रेम ही परमात्मा है।

www.thearyasamaj.org

भाग्यवान गृहस्थी

लेखकः महात्मा प्रभु आश्रित जी महाराज

एक विरक्त साधु का किसी नगर में आगमन हुआ और नगर के बाहर किसी रमणीक वाटिका में ठहरे। साधु बड़े तपस्वी और तेजस्वी थे। श्रद्धालु भक्तों की इच्छा से सत्संग भी लगता। महाराज के अनुभवी उपदेश जनता को ऐसा मुग्ध कर देते कि उन्हें अपने गृह आदि सब विस्मरण हो जाते। अनेकों बार तो उपदेश समाप्त हो जाने की भी उन्हें सुध न रहती और ज्यों के त्यों बैठे डटे रहते। दृष्टि उनकी साधु पर रहती कर्ण भी ऐसा प्रतीत करते कि हम कुछ श्रवण कर रहे हैं और मन मग्न हो रहा है।

साधु का नियम

साधु का नियम था कि वह किसी गृह में जाकर भोजन न करते थे। जो खिलाता वहां ही लाता। ऐसा उन्होंने प्रथम दिवस से ही सूचना दे रखी थी।

आज एक सरल स्वभाव श्रद्धालु भक्त ने भोजन बनवाया। स्वीकार होने पर स्वगृह को गया और अपनी धर्मपत्नी से कहा। वह सुनते ही अत्यन्त हर्षित होकर बोली, मैं तो भोजन ऐसे महाराज को घर पर खिलाऊंगी।

पति–उनका तो नियम ही ऐसा है, वह किसी के गृह पर नहीं जाते।

पत्नी–वह गृहस्थी क्या? जिसके गृह पर पधारने से अतिथि इन्कार कर दे।

पति–जब किसी ने नियम ही ऐसा बनाया हो तो कोई कैसे और क्यों भंग कर सकता है? वह पूजनीय हुए, हम गृहस्थी उनके आधीन हैं, हमारी क्या सामर्थ्य कि उनके नियम को भंग करें। आवश्यकता हमें है उनको भोजन खिलाने की, न कि उनको है खाने की?

नियम भंग

पत्नी–इसमें गृहस्थी की कमजोरी (त्रुटि) पाई जाती है। यह नियम मनुष्य का अपना बनाया हुआ है न कि परमात्मा का, अतः यह सर्वकाल और सर्व-देश सत्य नहीं हो सकता। हमारे तो एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है, "मेहमान आया भगवान आया"–यदि अतिथि (मेहमान) घर न आए तो भगवान कैसे आया समझा जायेगा।

पति–तो फिर कैसे लाया जाय? मुझे तो असम्भव सा प्रतीत होता है।

पत्नी मार्ग दर्शाती है

पत्नी–जैसे मैं प्रार्थना करती हूँ उन्हीं शब्दों में आप प्रार्थना करेंगे तो वह अवश्य चले आवेंगे। भावना तो हमारे अपने ही हृदय की सच्ची और दृढ़ होनी चाहिए। किसी कवि ने कहा है–

www.thearyasamaj.org

चुपके चुपके जो सदा दिल से किया करता है।
उसको निश्चय से ही वह मन्जूर किया करता है।।
बारगाहे ईश से मायूस न होना हर-गिज।
तू तो मनुष्य है वह चींटी की भी सुना करता है।।

गृहस्थी की दीनता को प्रभु भी अनसुनी नहीं करते, विशाल करुणामय होकर सुना करते हैं। तो उनके प्यारे क्यों उल्लंघन और अवहेलना करने लगे।

आप जब जाएं तो नतमस्तक, कर जोड़ यह प्रार्थना करें।

प्रार्थना

"भगवन्! महाराज को कष्ट तो अवश्य होगा परन्तु श्री चरणों से मेरा गृह पवित्र हो जायेगा। हम कई क्षुद्र जीवों के जीवन की ज्योति श्री महाराज के दर्शनों से जग जावेगी।

हम दीन बुद्धि मलीन पतित आपके यजमानों की काया पलट जावेगी। हमारे गृह और पाकशाला की त्रुटियां सुधर जावेंगी। गृह में अतिथि यज्ञ (भोजन कराने) से हमारे लिए शेष, यज्ञशेष बनकर अमृत बन सकेगा, अन्यथा नहीं। उच्चकोटि के मनुष्य तो उच्च होते ही हैं, वह गृह पर खिलावें अथवा बाहर। मैं तो एक निकृष्ट-सा क्षुद्र जीव हूँ और अवगुणों से लिप्त हूँ, महाराज की करुणामय दया दृष्टि से मेरे परिवार का सौभाग्य उदय हो जायेगा।

पति ने प्रार्थना कण्ठस्थ करली और पूछा क्या बनाओगी?

पत्नी–जो आपकी आज्ञा हो और उनके रुचिकर हो।

पति–आप खीर, मालपुए, व्यंजन, पुरोडाश (हल्वा) बना दीजिए और पकोड़ों पर उनकी अधिक प्रीति रहती है, वह भी बना दीजिये।

पत्नी–बनाना तो यही कुछ चाहती थी परन्तु एक समय में सबका मेल नहीं। पुरोडाश और पकोड़े तो रात्रि को बनाऊंगी, शेष अब तैयार करूंगी।

पति–रात्रि का भोजन तो वह करते ही नहीं।

पत्नी–जब एक बार आ जावेंगे तो आप निश्चिन्त रहिए, रात्रि को बड़े हर्ष से चरण पधारेंगे।

देवी ने भोजन अगाद्ध श्रद्धा तथा भक्तिभाव से तैयार किया। समय हुआ और भक्त महाराज की सेवा में गए।

प्रेम का कलश उमड़ पड़ा

नमस्कार कर, कर जोड़ ऐसी दीनता से प्रार्थना कि की मानसपत्र प्रेम से पूरित हो गया और उमड़ पड़ा। नेत्रों से अश्रुपात होने लग पड़े।

साधु पर जादू चल गया

विरक्त साधु पर उसके भक्ति तथा श्रद्धा के शब्दों ने ऐसा प्रभाव किया कि साधु को अपना

www.thearyasamaj.org

नियम ही मस्तिष्क से विस्मृत हो गया और तुरन्त उठकर साथ चल दिए, ''नियम भंग हो गया।'

बुद्धि और शंका

मार्ग में जब सचेत हुआ तो विचार उत्पन्न हुआ कि यह भक्त कैसा श्रद्धालु है। वर्षों बीते हम किसी गृहस्थी के गृह भोजन करने नहीं गये नियम नहीं तोड़ा। किसी एक ने भी ऐसे शब्दों में याचना नहीं की। शंका हुई कि क्या यह इस भक्त की अपनी बुद्धि है अथवा धर्मपत्नी की? पूछने लगे–

क्यों भक्त जी! यह तो बतायें कि तुम्हारी बुद्धि मुझे बांधकर ले जा रही है अथवा आपकी धर्मपत्नी की?

भक्त–भगवन्! मुझे इतनी बुद्धि कहां? यह तो मेरी धर्मपत्नी पर ही प्रभु की कृपा का प्रभाव है। मेरी कमाई को शुद्ध पवित्र करने वाली तो वही साक्षात् देवी है।

इतने में घर पहुंच गए। देवी ने दरवाजे पर जाकर सत्कार और नमस्कार की। सब बालकों ने भी चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लिया, अन्दर पहुंचे।

साधु का सत्कार

देवी ने लोटा जल का पतिदेव को दिया एक युवा बालक तौलिया उठाए समीप ही खड़ा है। पतिदेव ने महाराज के पग प्रक्षालन किये और हाथ मुंह धुलाए। बालक ने झट तौलिये से पग पूंछने आरम्भ कर दिए। अतिथि देवता आज इस प्रकार का विलक्षण स्वागत देख गद्-गद हो बालक से तौलिया ले लिया और आप साफ करने लगे।

आसन बिछा था, बिठाया।

भोजन परोस देवी ने पतिदेव के हाथों से आगे रखवाया।

देवी और साधु का सम्वाद

साधु– देवी जी! मैं भोजन खाने से पूर्व एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ, क्या उत्तर दोगी?

देवी–यथा सम्भव और यथोचित आज्ञा का पालन करूंगी।

साधु–जिस प्रश्न को मैं पूंछना चाहता हूँ वह आपसे एकांत में होकर पूंछना चाहता हूँ। आपका पति और बालक बाहर चले जावें किवाड़ बन्द कर दो, तब मैं पूछूंगा।

देवी–महराज! अब यही तो एकांत है निश्शंक होकर पूछिए।

साधु–इतने व्यक्तियों में एकांत कैसे? आप अकेली से ही एकांत होगा।

देवी–भगवन्! आपको भ्रम लग रहा है एक पतिव्रता स्त्री के लिए तो इसे ही एकांत कहते हैं। शरीर में जो देखने वाली आंखें हैं, जब तक जागती हैं, इनको तो एकांत हो ही नहीं सकता। मन विचार रहित न रहने से एकांत नहीं हो सकता, एकांत तो माना गया है जब आत्मा परमात्मा के अर्पण हो जावे। स्त्री अपने पति के अर्पण होने से स्त्री और पति एक है। स्त्री तो कभी भी किसी

www.thearyasamaj.org

बात को अपने पति से नहीं छिपा सकती और न उसकी आज्ञा बिना चल सकती है। जब पति ही आत्मा है और पत्नी छाया है किससे पृथक हो? बालक इन्हीं के अंग हैं। आप कृपा करके भोजन में प्रेम रस लीजिए और हमारे हृदयों को पवित्र कीजिये। तत्पश्चात् जो आज्ञा होगी, मैं प्रश्न का उत्तर दूंगी।

साधु पर प्रभाव

साधु की अन्तर दृष्टि एकांत की सेवा से बहुत दूर पहुंच गई। प्रसन्नता से फूला न समाया। बड़े प्रेम से भोजन किया। परन्तु भोजन में एक-एक ग्रास में नए-नए ज्ञान की उपज होती पाई। दांत चबा रहे हैं और मन प्रभु के गुप्त ज्ञान को उत्पन्न कर-कर आह्लाद से भर रहा है और घर वालों का धन्यवाद गा रहा है।

भोजन समाप्त करने पर भक्त ने कुल्ला कराया और साधु आकर बैठ गए और संवाद फिर आरम्भ हुआ।

साधु–देवी! मेरा प्रश्न यह है कि आप बुद्धिमान हैं अथवा आपके पतिदेव?

देवी–भगवन्! बुद्धि तो सिर में होती है और मेरा सिर तो मेरे पतिदेव ही हैं। आगे कोई शंका रहती नहीं।

साधु ऐसे सारगर्भित शब्दों को सुनकर आश्चर्य में गया ऐसे-2 गृहस्थी छिपे पड़े हैं जो हमारे ज्ञान के अभिमान को हमारी भक्ति तपस्या भाव को अपनी श्रद्धामयी सेवा से चूर-चूर कर देने वाले हैं। यद्यपि मेरा नियम भंग हुआ परन्तु मेरा तो आज इस देवी-देवता ने आवरण उठा दिया। मेरी तो इन गृहस्थियों के चरणों को नमस्कार है। वस्तुतः उसका मस्तिष्क देवी के चरणों में दूर बैठे-बैठे झुकने लग पड़ा।

भक्त तो सरल स्वभाव था। उसका ध्यान तो वहां न गया परन्तु देवी उधर ही साधु की सर्व चेष्टाओं तथा संकेतों को देख रही थी, जान गई और कहने लगी, 'भगवन्' ! पूज्य देव होकर लज्जित करते हैं आपके आशीर्वाद से तो हमारा कल्याण होता है।

साधु चौंका। कहा, मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ। आप मांगो क्या आशीर्वाद चाहती हो?

जादू चल गया

देवी-भगवन्! बस और कुछ अभिलाषा नहीं। सायंकाल भी पदार्पण करके हमें शेष खाने का सौभाग्य प्राप्त कराइए।

देवी का जादू चल गया। इन अनोखे निराले शब्दों ने मोहित कर लिया और साधु यह भी नहीं कह सका कि मैं तो रात्रि को भोजन किया ही नहीं करता, अवाक् हो गया और तथाऽस्तु कहकर उठ खड़े हुए। नमस्कार की और भक्त पहुंचाने चले गए। मार्ग में साधु ऐसा मस्त हो गया कि भक्त से कोई बात नहीं कर सका।

दिन भर साधु आज ऐसा मग्न और मस्त रहा कि उसे बिना प्रभु चिन्तन और नवीन ज्ञान विचारधाराओं में तथा उस गृह परिवार के आकार प्रकार के और कोई बात अच्छी न लगती।

सायंकाल हुआ, भक्त ने आकर सिर झुकाया और दोनों चल दिए।

–(शेष अगले अंक में)

www.thearyasamaj.org

प्राण और मन

लेखकः पं० कमलेशकुमार अग्निहोत्री

ओं विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।।

वैदिक सत्संग में उपस्थित माताओ-बहिनों एवं धर्मप्रेमी सज्जनो! यदि हम अपने प्राण और मन का महत्व समझ कर इनका सदुपयोग करें तो निश्चय ही इहलोक और परलोक की सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। यह बात मैंने कल प्रातः के सत्संग में आपको कही थी। आज के सत्संग में मैं पुनः आपके समक्ष हमारे लिए प्रभु प्रदत्त महत्वपूर्ण **साधन प्राण और मन की महिमा सम्बन्धी** अति संक्षेप से विचार प्रस्तुत करूंगा आप ध्यानपूर्वक सुनिये।

दार्शनिकों के कथनानुसार मन और प्राण सूक्ष्म शरीर के अंग होने के कारण हम जीवात्माओं का स्थूल शरीर के साथ संयोग होते ही ये सक्रिय हो जाते हैं, तथा मुक्ति पर्यन्त हमारे साथ रहते हैं। जन्म-जन्मान्तरों के शुभाशुभ संस्कारों से युक्त इस जड़ मन को वेद ने बहुत शक्तिशाली बताया है। श्रीमद्भगवद् गीता के अनुसार जीवात्मा के लिये मन ही बन्धन और मुक्ति का कारण है। अवस्था भेद की दृष्टि से मन जागृत और स्वप्न में तो जीवात्मा का साथ देता है किन्तु प्रगाढ़ निद्रा में सर्वथा निष्क्रिय हो जाता है, जबकि प्राण शरीर में जीवात्मा का वास रहता है तब तक निरन्तर (प्रतिक्षण) सक्रिय रहा करता है।

प्राण और मन को अपने अनुकूल तथा नियन्त्रित बनाये रखना हमारे लिये बहुत आवश्यक है। क्योंकि अन्य योनियों में तो जीवात्मा को प्राण और मन के महत्व का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं रहता, यह सुविधा तो केवल मानव तन में ही प्राप्त है। अब सर्वप्रथम प्राण का हमारे तन में क्या महत्व है? मैं यह बता रहा हूँ। छान्दोग्योपनिषद् के ऋषि ने अलंकारिक ढंग से वर्णन करते हुए तन में प्राणों की महत्ता पर बहुत ही सुन्दर प्रकाश डाला है। कहा है कि संसार में सभी प्राणियों का जीवन प्राणों पर ही स्थिर है। यद्यपि शरीर में सभी इन्द्रियों का अपना-अपना महत्व है, परन्तु प्राणों के अभाव में इनका कोई मूल्य नहीं। यदि आँख, कान, नाक, वाणी, हाथ-पाँव, मन आदि इन्द्रियाँ हमारा साथ न दें तो भी हम जीवित रह सकते हैं, किन्तु प्राणों के असहयोग से जीवित रहना असम्भव है। तभी तो मृतक के लिये कहा जाता है कि 'इसका प्राणान्त हो गया'।

अब प्राणों का आधार क्या है? यह भी सुन लीजिए। इसी उपनिषद् में अन्न को प्राणों का आधार बताया गया है। अन्न से अभिप्राय है, फल, दूध, मेवा, जल, शाकपात, अनाज आदि समस्त सेवनीय पदार्थ। ये प्राण रक्षा के लिये आवश्यक हैं। जो शुद्ध और पवित्र होने चाहिये, अन्यथा शारीरिक विकार उत्पन्न होने से प्राणों का संतुलन बिगड़ जाता है। इसके अतिरिक्त प्राणों को नियन्त्रित और

अनुकूल बनाये रखने में प्राणायाम भी बहुत सहायक है। संसार का प्रत्येक प्राणी अपने स्वाभाविक ज्ञान के अनुसार प्राणायाम करता है। हम बुद्धिमान प्राणियों को तो इस ओर विशेष ध्यान देना ही चाहिये। पूर्व सत्संगों में मैं आपको प्रसंगवश बता चुका हूँ कि नियमित रूप से प्राणायाम करनेवालों को कभी हृदय रोग नहीं होता।

इस सन्दर्भ में यह भी आवश्यक है कि हम अपने स्वास्थ्य का पूर्ण ध्यान रखते हुए, चिन्ता, भय, क्रोधादि एवं अमर्यादित भोगों से बचें। अर्थात् हमारा मन शिव संकल्पों वाला हो जिससे कि हम विषय विकारों की ओर प्रवृत्त न हों। दूषित मन चंचल और विषय वासनाओं का घर हुआ करता है। विलासी और क्रोधी व्यक्ति अपने प्राणों का व्यर्थ क्षय करके असमय में ही काल के ग्रास बन जाते हैं। प्राणों की क्षति एवं सुरक्षा का होना मन पर बहुत कुछ निर्भर करता है, और मन की शुद्धि के लिए आहार, विहार-व्यवहार की पवित्रता अति आवश्यक है। मैं आपको बता चुका हूँ अन्न बोला करता है आदमी नहीं। मुँह, नेत्र, कर्ण, नासिका द्वारा जो भी हम ग्रहण करते हैं उसी के अनुसार हमारा मानस बनता है।

मैंने यह भी स्पष्ट किया था कि मन का प्राणों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर के पंचकोषों में प्राणमय और मनोमय कोष अत्यन्त निकट हैं। अतः प्राणायाम के द्वारा मन पर नियन्त्रण किया जा सकता है। इसके लिये धैर्य बहुत आवश्यक है, क्योंकि जन्म-जन्मान्तरों के मन पर अंकित संस्कार शीघ्र ही नहीं मिटाये जा सकते। रात को भाई प्रभाराम सोसायटी में मैंने अथर्ववेद के माध्यम से प्रवचन करते हुए बताया था कि मन रूपी केसेट का अन्त मुक्ति से पूर्व नहीं आया करता। इस पर अंकित जिस संस्कार का जब उदय होता है तब मनुष्य की प्रवृत्ति वैसी ही हो जाती है। अतः पूर्ण पुरुषार्थ द्वारा हमें पूर्व संचित सद्प्रवृत्तियों की रक्षा करने और दुष्वृत्तियों के प्रभाव से बचने का यत्न अवश्य करना चाहिये।

हमें सर्वाधिक शक्तिशाली सेवक मन ही मिला है, यदि यह मित्र बन जावे तो परमात्मा की अनुभूति कराने तक हमारा साथ देता है और शत्रु होने पर हमारे लिए महा विनाशकारी हो जाता है। इसी प्रकार प्राणों का महत्व है, यदि ये हमारा साथ छोड़ दें तो हम निश्चय ही मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं। जीवन का लक्षण प्राण ही है, यही कारण है कि वेदमाता हमें मन और प्राणों के प्रति विशेष सावधान करते हुए सम्बन्धित उपयोगी पदार्थों साधनों का उपभोग मर्यादित होकर करने अर्थात् विषय जन्य वासनाओं के दास न बनने का उपदेश दे रही है। ऐसा तभी सम्भव है जब मन पवित्र और नियन्त्रित हो।

सीमा तक बहने वाली नदी का जल सुखदीय माना जाता है, किनारे तोड़कर बाहर आया हुआ पानी तो विनाशकारी ही होता है। कहते हैं कि अग्नि-जल और मन नियन्त्रित ही हितकर हुआ करते हैं, अनियन्त्रित हाने पर ये घातक सिद्ध होते हैं। मैं आपसे पूर्व निवेदन कर चुका हूँ, भोजन के अतिरिक्त हमारे देखने, सुनने तथा पढ़ने आदि का भी मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। वर्त्तमान के वातावरण को देखते हुए हमें भद्र दर्शन, भद्र श्रवण और उत्तम साहित्य पठन की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, अन्यथा मानवीय गुणों की रक्षा होना कठिन है।

www.thearyasamaj.org

अनुभवी विद्वानों का कहना है कि **निर्दोष मन वाला व्यक्ति ही निर्भीक हुआ करता है,** उसे किसी का कभी कोई भय नहीं होता। विद्वान् यह भी कहते हैं कि तन की अपेक्षा मन का रोग अधिक घातक होता है। सबल मन वाला निर्बल तन में भी सुखी रह सकता है किन्तु जिसका तन सबल और मन निर्बल है, वह जीवन में कभी उन्नति नहीं कर पाता। **मन, इन्द्रियों का स्वामी कहलाता है।** अतः दूषित मनवाला व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं रख सकता, यह तथ्य निर्विवाद है। योगीराज भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय सखा अर्जुन को अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चंचल मन पर नियन्त्रण करने का उपदेश दिया है। वेद प्रतिपादित विचारों का प्रचार-प्रसार ऋषि शैली में न होने के परिणामस्वरूप आज अधिकांश मनुष्यों की मानसिक अवस्था ठीक नहीं है, इसलिये सभी विद्वानों को इस ओर ध्यान अवश्य देना चाहिये।

वर्त्तमान में ईश्वर, धर्म, आचरण-व्यवहार, पूजा-पाठ सम्बन्धी जो वेद विरूद्ध मान्यतायें प्रचलित हैं उनका प्रमुख कारण मन पर अंकित संस्कार ही हैं। मेरा अपना चिन्तन यह है कि मन को सुसंस्कारी बना कर अज्ञान-अविद्या, अन्धकार जन्य पापाचार से अर्थात् हर प्रकार के दुर्व्यसनों-दुरितों से परमात्मा के अमृत पुत्र मानव को मुक्त किया जा सकता है। विकृत मन प्राणरक्षा में सहायक नहीं होता, अतः सुखमय दीर्घजीवन के लिये मन की पवित्रता का ध्यान रखना ही चाहिये। मन की अनुकूलता लोक और परलोक की सिद्धि में आवश्यक मानकर मनीषियों ने कहा है कि यदि मन शुभ संकल्पों से युक्त नहीं है तो चाहे कोई कितना भी पूजा-पाठ, भजन, कीर्तन करे, लाभ नहीं होगा। सन्त कबीरदास जी महाराज ने कहा है-

कबीर मन तो एक है चाहे जिधर लगाय।
चाहे प्रभु की भक्ति कर चाहे विषय कमाय।।

हम अपने मन की स्वच्छता और पवित्रता के प्रति सदैव सजग रहें, इसे विषय विकारों के अधीन न होने दें, जिससे कि जीवन के आधार प्राणों की रक्षा करते हुए दीर्घ जीवी हो सकें।

मैं देख रहा हूँ कि चारों ओर भरे जल को पारकर आप यहाँ वैदिक प्रवचन सुनने के लिये श्रद्धा से पधारते हैं। मेरी अन्तर कामना है आप सभी सत्संगप्रेमी महानुभाव सुने हुए वैदिक विचारों पर मनन अवश्य करें। अर्थात् मैंने आज मन और प्राणों की महत्ता पर जो संक्षिप्त जानकारी दी, उसे अपने चिन्तन का विषय बनावें। मेरा विश्वास है आप इन कल्याणकारी मान्यताओं को अपना कर अवश्य ही सफल काम हो सकते हैं।

अन्त में मैं पुनः निवेदन करता हूँ आप अपने मन और प्राणों का सदुपयोग ही करें। परमेश प्रभु ओ3म् हमें शक्ति-भक्ति प्रदान करें, जिससे कि हम अपना जन्म सफल करे ही इस पवित्र मानव तन को छोड़ें। अब आज के प्रवचन को मैं यहीं विराम दे रहा हूँ। ❁❁❁

www.thearyasamaj.org

वीरेश्वर मुखोपाध्याय की ईमानदारी

बंगाल में मालदा शहर के बाहर एक बड़े बगीचे में एक तेरह-चौदह वर्ष का लड़का घूम रहा था। इतने में बशीर मुहम्मद नाम का एक काबुली मुसाफिर अपने साज-सामान के साथ वहाँ आ पहुँचा। वह थोड़ी देर यहाँ ठहरा और जाते समय रुपयों की एक थैली वहीं भूल गया। उस थैली में पाँच हजार रुपये थे। उस चौदह वर्ष के बंगाली लड़के ने उस थैली को देखते ही उठा लिया और यह जानकर कि उसमें बहुत रुपये हैं-उसने ईमानदारी बरती और रुपये उसके असली मालिक को देने का निश्चय किया।

उधर बशीर मुहम्मद जब कुछ दूर निकल गया, तब उसे रुपयों की थैली याद आयी। बहुत घबराया और बगीचे की ओर उलटे पाँव दौड़ा। बालक ने उसे चिन्तित देखकर पूछा-''क्या तुम्हारी कोई चीज खो गई है?'' व्यापारी ने कहा-''मेरी रुपयों की थैली खो गई है।'' बालक ने उसको दिखाते हुए कहा-''ये अपने रुपये लो।' बशीर मुहम्मद ने थैली खोलकर गिना तो उसमें एक भी रुपया कम नहीं था। फिर उसने बालक से पूछा-''तुमने इतने रुपयों के लालच को कैसे रोका? बालक ने नम्रतापूर्वक कहा-''मैंने बचपन से ही यह सीखा है कि दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले के समान तुच्छ समझकर कभी भी चोरी नहीं करनी चाहिए।'' बालक की बात सुन कर वह व्यापारी चकित रह गया और खुशी से उसको पाँच रुपये इनाम देने लगा। पर लड़के ने कहा-मैंने आपके रुपये आपको दे दिये यह मेरा धर्म ही था। इसमें इनाम की कौनसी बात है? न लौटाता तो जरूर बेईमानी करता।''

उस लड़के की यह भलमनसाहत देखकर बशीर मुहम्मद उसको बहुत शाबासी देने लगा और उसके इस भले काम की खबर उसने समाचार पत्रों में छपाई। उस बालक की साधुता की कहानी के अन्त में बशीर मुहम्मद ने कहा था कि 'वे रुपये मेरे मालिक के थे। यदि बालक वे रुपये खा गया होता तो मेरे मालिक का विश्वास मेरे ऊपर से उठ जाता और मुझे कैदखाने में जाना पड़ता। इसलिए इस बालक ने मेरे ऊपर कितना बड़ा उपकार किया है, इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैं कभी इस लड़के को भूल नहीं सकता और मैं प्रतिदिन यह प्रार्थना करूंगा कि प्रभु इसे लम्बी उम्र और सुख प्रदान करे।'

उस बालक का नाम 'वीरेश्वर मुखोपाध्याय' था। साधुता के गुण से प्रत्येक मनुष्य इसी प्रकार लोकप्रिय और आशीर्वाद का पात्र बन सकता है। ❁❁❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2016 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2017 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही **'सत्य प्रकाशन'** कार्यालय को जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें। इस वर्ष का विशेषांक **''भारत और मूर्तिपूजा''** छपकर तैयार हो रहा है बहुत जल्दी ही आपके हाथों में होगा। **आप यथाशीघ्र बकाया शुल्क भिजवायें।**

-व्यवस्थापक तपोभूमि मासिक

www.thearyasamaj.org

आपकी निन्दा आपकी योग्यता का प्रमाण पत्र है।

जानती हैं, 'आपके बारे में वह क्या रही थीं?' बड़ी आत्मीयता से हमारी कोई परिचिता हम से कहती है।

'क्या?' और बड़ी जिज्ञासा से हम अपने विषय में सुनना प्रारम्भ कर देती हैं।

यह प्रसंग प्रायः अप्रिय ही होता है और हम आवेश से भर उठती हैं। जी में आता है कि आलोचना करने वाली का हम मुँह नोंच लें, परन्तु न तो वह हमारे सामने होती है और न ही हममें ऐसा करने की हिम्मत ही होती है। और फिर, एक हो तो उसका मुँह नोंचा जाए। अतः होता क्या है-हम भी उसके विरुद्ध न मालूम क्या-क्या कह डालती हैं।

और हमारी परिचिता उनमें जाकर कहती है। 'जानती हैं, आपके बारे में वह क्या रही थीं?' जहाँ यह क्रम दो-चार बार चला कि दो परिचिता एक-दूसरे के विरोधी और दो अच्छे मित्र एक दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं।

इस प्रकार की परिस्थिति में यदि हम एक क्षण के लिए भी यह विचार करें कि इस प्रकार की आलोचनाओं के पीछे वास्तविक कारण क्या होते हैं तो हमारा सारा दृष्टिकोण ही बदल जाए। यह जानकर कि किसी ने हमारे बारे में अप्रिय बातें कही हैं हमें प्रसन्नता हो और आलोचना करने वालों के प्रति हमें विशेष सहानुभूति हो।

है तो बात कुछ उल्टी-सी और समझ में भी नहीं आती लेकिन हकीकत यह है कि बचपन से ही प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्वता के माहौल में पल कर हमारी ये प्रेरणाएं अत्यन्त प्रबल हो जाती हैं और हमारे दैनिक जीवन की प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करती रहती हैं, जिनका अहसास भी हमें नहीं हो पाता।

यही वजह है कि हम अपने किसी परिचित-की सफलता के बारे में सुनती हैं और न चाहते हुए भी उदास हो जाती हैं। आपने देखा होगा कि बच्चे जब खेल में हार जाते हैं तो प्रायः हाथापाई पर उतर आते हैं। हाथापाई नहीं करेंगे तो बुरे और कटु शब्दों का ही प्रयोग कर देंगे। बड़े होने पर भी हार की स्थिति में हमारी प्रतिक्रिया ठीक बच्चों जैसी ही होती है। अन्तर केवल इतना होता है कि ग्लानि की अभिव्यक्ति का रूप कुछ दूसरा हो जाता है। शिष्टता के नाते सामने तो हम आलोचनात्मक शब्दों का प्रयोग कर नहीं पाते, लेकिन पीठ पीछे जब तक उल्टे-सीधे आक्षेप नहीं लगा देते, चैन नहीं मिलता।

यदि गौर करें तो आप देखेंगी कि जहाँ किसी ने किसी दूरे की तारीफ की, शीघ्र एक विपरीत प्रतिक्रिया होती है और ठीक बच्चों के व्यवहार की तरह इसकी अभिव्यक्ति आलोचनाओं द्वारा होती हैं। उदाहरण के लिए एक ने कहा, अमुक स्त्री खाना, बहुत स्वादिष्ट बनाती है, तुरन्त उत्तर मिलेगा, ऊँ हूँ, कहीं भी नहीं। बस घी-ही-घी तो रहता है। अथवा, 'हाँ, बना तो लेती हैं, लेकिन बच्चे तो ऐसे फिरते हैं

www.thearyasamaj.org

कि बस.....' या कोई अन्य इसी तरह की और लांछना।

इस तरह की आलोचनात्मक बातचीत का विषय प्राय: समान स्तर पर ही अधिक रहता है। हम अपने से निम्न स्तरों के परिचितों की प्राय: कोई टीका टिप्पणी नहीं करते, क्योंकि इनसे हमारी प्रतिद्वन्द्वता की भावना को ठेस नहीं लगती। पुरुषों में भी व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्वता के कारण एक वकील वकील को, एक डाक्टर डाक्टर को, एक शिक्षक शिक्षक की बुराई करता हुआ पाया जाएगा, विशेषतया उनकी जिनके वह सम्पर्क में आता है।

प्रतिद्वन्द्वता के कारण ही एक पड़ोसी अपने दूसरे पड़ोसी की और एक रिश्तेदार दूसरे रिश्तेदार की निन्दा करते हुए पाये जाते हैं। जहाँ घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध होना चाहिए वहाँ एक दूसरे का मुँह देखना भी अप्रिय हो जाता है।

कहने का तात्पर्य है कि जब कोई आपके सम्बन्ध में अप्रिय बात कहता है या अन्य कोई दोषारोपण करता है तब तुरन्त यह समझना चाहिए कि वह आपकी किसी सफलता से आहत है और प्रतिद्वन्द्विता की दौड़ में अपनी पराजय और आपकी जीत का प्रमाण-पत्र दे रहा है। ऐसी दशा में बताइये बुरा मानने की क्या बात है? आपको तो इससे प्रसन्न होना चाहिए।

सच बताइये क्या आप यह चाहेंगी कि आपके पीछे कोई निन्दा न करे। यह तो तभी सम्भव है जब आप आगे बढ़ने की दौड़ में सबसे पीछे रहना स्वीकार कर लें। ऐसी स्थिति में क्या आपको अपनी बुराई करने वालों के प्रति सहानुभूति नहीं होनी चाहिए। यदि हम इस दृष्टिकोण को अपना सकें तो देखेंगी कि हमारा सारा मनोमालिन्य दूर होता जा रहा है और हम सबकी प्रिय बनते जा रही हैं। ❁❁❁

महापुरुषों की जयन्ती

याज्ञवल्क्य	**3 मार्च**
संत तुकाराम	**14 मार्च**
छत्रपति शिवाजी	**15 मार्च**
राममनोहर लोहिया	**23 मार्च**
हेमु कालानी	**23 मार्च**
डॉ0 हेडगेवार	**28 मार्च**

विश्व महिला दिवस	8 मार्च
होलिका दहन	12 मार्च
धूलेंडी	13 मार्च
विश्व ग्राहक दिवस	15 मार्च
विश्व अपंग दिवस	20 मार्च
आर्यसमाज स्थापना दिवस	28 मार्च
सृष्टि संवत्सर	28 मार्च

महापुरुषों की पुण्यतिथि

सरोजिनी नायडू	**2 मार्च**
बाबा पृथ्वीसिंह आजाद	**5 मार्च**
पं0 गोविन्दबल्लभ पंत	**7 मार्च**
सावित्रीबाई फुले	**10 मार्च**
पं0 लेखराम	**18 मार्च**
पं0 गुरूदत्त विद्यार्थी	**19 मार्च**
शहीद सरदार भगतसिंह	**23 मार्च**
शहीद राजगुरू	**23 मार्च**
शहीद सुखदेव	**23 मार्च**
गणेशशंकर विद्यार्थी	**25 मार्च**
भाई काका	**31 मार्च**

www.thearyasamaj.org

अनल किरीट

रचयिता–रामधारीसिंह दिनकर

लेना अनल–किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले!
कालकूट पहले पी लेना, सुधा–बीज बोनेवाले!

(1)

धरकर चरण विजित श्रृंगों पर झण्डा वही उड़ाते हैं,
अपनी ही उँगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं।

पड़ी समय से होड़, खींच मत तलवों से काँटे रुककर,
फूँक–फूँक चलती न जवावनी चोटों से बचकर, झुककर,

नींद कहाँ उनकी आँखों में जो धन के मतवाले हैं?
गति की तृषा और बढ़ती, पड़ते पद में जब छाले हैं।

जागरूक की जय निश्चित है, हार चुके सोनेवाले;
लेना अनल–किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले!

(2)

जिन्हें देखकर डोल गयी हिम्मत दिलेर मरदानों की;
उन मौजों पर चली जा रही किश्ती कुछ दीवानों की।

बेफिक्री का समाँ कि तूफाँ में भी एक तराना है,
दाँतों उँगली धरे खड़ा अचरज से भरा जमाना है।

अभय बैठ ज्वालामुखियों पर अपना मन्त्र जगाते हैं,
ये हैं, जिनके जादू पानी में आग लगाते हैं!

रूह जरा पहचान रखें इनकी जादू–टोनेवाले,
लेना अनल–किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले!

(3)

तीनों लोक चकित सुनते हैं, घर–घर यही कहानी है,
खेल रही नेजों पर चढ़कर रस से भरी जवानी है।

www.thearyasamaj.org

भू सँभले, हो सजग स्वर्ग, यह दोनों की नादानी है।
मिट्टी का नूतन पुतला यह अल्हड़ है, अभिमानी है।

अचरज नहीं, खींच ईंटें यह सुरपुर को बर्बाद करे।
अचरज नहीं, लूट जन्नत वीरानों को आबाद करे।

तेरी आस लगा बैठे हैं पा–पाकर खोनेवाले।
लेना अनल–किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले!

(4)

सँभले जग, खिलवाड़ नहीं अच्छा चढ़ते–से पानी से,
याद हिमालय को, भिड़ना कितना है कठिन जवानी से।

ओ महादेश! बुरा फल है शूरों के शोणित पीने का;
देना होगा तुम्हें एक दिन गिन–गिन मोल पसीने का।

कल होगा इन्साफ, यहाँ किसने क्या किस्मत पायी है।
अभी नींद से जाग रहा युग, यह पहली अँगड़ाई है।

मंजिल दूर नहीं अपनी, दुख का बोझा ढोनेवाले!
लेना अनल–किरीट, भाल पर ओ आशिक होनेवाले।

❁❁❁

अस्थिर जीवन

जैसे जल में बुल–बुले उठें क्षण में बन और बिगड़ते हैं।
ऐसे ही प्रेमी दुनियाँ में नित मिलते और बिछुड़ते हैं।

सब संचय होते क्षीण यहाँ है उन्नतियों का अन्त पतन।
संयोगों में छिपता वियोग है जीवन के ही संग मरण।

ये जरा मरण सबको खाते निर्बल या विश्व विजेता हो।
शासक चाहे धरती का या भीख मांग कर लेता हो।

दुःख सुख तो मानव जीवन में सब क्रम से आते जाते हैं।
हैं पुण्यशील सुख से जीते पापी रोते पछताते हैं।

❁❁❁

www.thearyasamaj.org

ओ३म्

गुरूकुल विश्वविद्यालय, वृन्दावन (मथुरा) में प्रवेश प्रारम्भ

योगिराज भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली एवं युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की दीक्षास्थली पवित्र ब्रजभूमि मथुरा में प्रखर राष्ट्रभक्त महाराज श्री महेन्द्रप्रताप द्वारा प्रदत्त सुविस्तृत भूखण्ड में स्थित श्रद्धेय नारायण स्वामी जी की तपस्थली गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में प्रवेश प्रारम्भ हो चुके हैं। प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त ही विद्यार्थी को कक्षा 6 एवं 7 में योग्यता अनुसार प्रवेश दिया जा सकता है अथवा जिस विद्यार्थी को अन्य विषयों के साथ-साथ अष्टाध्यायी न्यूनतम 4 अध्याय कण्ठस्थ होगी, वह विद्यार्थी प्रवेश परीक्षा के उत्तीर्ण होने पर कक्षा 8 में भी प्रवेश पा सकता है।

गुरुकुल में प्राच्य व्याकरण के साथ-साथ अन्य सभी विषयों का गहनता से अध्ययन कराया जाता है। अतः विद्यार्थी का मेधावी होना आवश्यक है, इसलिए अभिभावक मेधावी, सुशी विद्यार्थी को ही प्रवेशार्थ लायें।

गुरुकुलीय परिवेश पूर्णतः वैदिक संस्कारों से परिपूर्ण है, इसके साथ ही भोजन, आवास एवं अध्ययनादि की व्यवस्था भी अति उत्तम है, आर्यजन इसका लाभ उठाकर अपनी संतानों को शिक्षित, सक्षम, संस्कारवान् एवं चरित्रवान्, राष्ट्रभक्त तथा ऋषिभक्त बनाकर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करें।

बालक ब्रह्मचर्य व्रतधारें, धर्म कर्म भरपूर करें।
ब्रह्म-विवेक-प्रकाश पसारें, मोह महातम दूर करें।।
युक्ति प्रमाण-तर्क पटुता से, भ्रम को चकनाचूर करें।
पन्थ न पकड़ें मतवालों के, साधु स्वभाव न क्रूर करें।।
सरल सुलक्षण संतानों को, संयमशील सुजान करो।
गुरुकुल पूजो वैदिक वीरो, विद्या बल धन दान करो।।

आचार्य स्वदेश
कुलाधिपति
चलभाषः 9456811519

आचार्य हरिप्रकाश
प्राचार्य
9457333425, 9837643458

www.thearyasamaj.org

फार्म–4

नियम 8 देखिये

1.	प्रकाशन का स्थान	मथुरा
2.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	रमेश प्रिंटिंग प्रेस, पंचवटी मथुरा
	(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ
	(विदेशी है तो मूल देश)	नहीं
	पता	रमेश प्रिंटिंग प्रेस, पंचवटी मथुरा
4.	प्रकाशक का नाम	आचार्य स्वदेश
	(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ
	(विदेशी है तो मूल देश)	नहीं
	पता	सत्य प्रकाशन, वृन्दावन मार्ग, मथुरा
5.	सम्पादक का नाम	आचार्य स्वदेश
	(क्या भारत का नागरिक है)	हाँ
	(विदेशी है तो मूल देश)	नहीं
	पता	सत्य प्रकाशन, वृन्दावन मार्ग, मथुरा
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	आचार्य स्वदेश, वृन्दावन मार्ग, मथुरा

मैं आचार्य स्वदेश एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

मथुरा
दिनांक 14 मार्च 2017

आचार्य स्वदेश
प्रकाशक के हस्ताक्षर

सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

शुद्ध रामायण सजिल्द	मूल्य 220)	गृहस्थ जीवन रहस्य	मूल्य 20)
शुद्ध रामायण अजिल्द	मूल्य 170)	श्रीमद् भगवद्गीता एक सरल अध्ययन	मूल्य 20)
शुद्ध हनुमच्चरित	मूल्य 60)	सन्ध्या रहस्य	मूल्य 20)
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)	गीता तत्व दर्शन	मूल्य 20)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)	दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
भारत और मूर्तिपूजा	मूल्य 30)	बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
मील का पत्थर	मूल्य 20)	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)	ओंकार उपासना	मूल्य 12)
चार मित्रों की बातें	मूल्य 20)	दादी पोती की बातें	मूल्य 10)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	मूल्य 20)		

www.thearyasamaj.org

भारत का भाग्यविधाता बना और सच्चे शिव को पाकर महर्षि दयानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। क्या इस देखने ने सारे संसार में भटके हुए लोगों की आँखें नहीं खोल दीं। क्या इस देखने वाले ने पवित्र ईश्वर वाणी के दर्शन सारे मानव समाज को नहीं करा दिया। आज जो सौभाग्यशाली वेद के सुगम पथ पर चलकर अपनी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं वह मात्र इसी देखने की करामात है। आज हम वर्षों से बोधोत्सव मनाकर जहाँ के तहाँ पड़े हैं। इसका तात्पर्य साफ है कि हमारे अन्दर ज्ञानचक्षु सर्वथा फूट चुके हैं। प्रभु कृपा करें कि आर्य लोग पुनः बोधदिवस पर ऋषिबोध वाली दृष्टि प्राप्त करें और अपना परिवार का और राष्ट्र के उन्नति का मार्ग प्रशस्त करें।

यज्ञ में उपस्थित लोगों को मंच से इसी प्रकार का संकल्प भी दिलाया गया कि हम सब ऋषि दयानन्द महाराज के बोध दिवस से दृष्टि को अपनाकर अपना बोध करें और आत्म साक्षात्कार कर मानवता के उद्धार का रास्ता साफ कर मानव जीवन को धन्य कर जायें। इस अवसर पर आगरा, अलीगढ़, हाथरस, एटा, बुलन्दशहर, भरतपुर आदि स्थलों के लोगों ने उत्साहपूर्वक सहभागिता की। मुख्य यजमान कृष्णवीर जी शर्मा फरीदाबाद रहे माननीय शर्मा जी वेदमन्दिर की प्रत्येक गतिविधि के मुख्य आधार रहे। आज वेदमन्दिर में जो भी विकास की धारा बह रही है उसके मुख्य कर्त्ता-धर्त्ता माननीय शर्मा जी ही हैं। कार्यक्रम का समापन लगभग 1 बजे किया गया। इसके बाद आश्रम तिलकद्वार से भव्य शोभायात्रा का आयोजन किया गया। गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन के ब्रह्मचारी, वैदिक कन्या इण्टर कालेज खुशीपुरा मथुरा की छात्रायें कन्या इण्टर कालेज आर्यसमाज तिलकद्वार की छात्राओं सहित अनेक विद्यालय की छात्र-छात्राओं ने भव्य झाँकियाँ निकालीं। संन्यासी लोग ओम् की पताका लेकर घोड़ों पर थे तो भजनोपदेशक झाँकियों में भजनों द्वारा प्रवचन कर रहे थे। ब्रह्मचारी वेदपाठ करते हुए और यज्ञ करते हुए चल रहे थे। आर्यों का भारी समुदाय ओम् ध्वज लिये शोभायात्रा की शोभा को बढ़ा रहे थे। चौक बाजार और कोतवाली रोड होते हुए सायंकाल 5 बजे शोभायात्रा का समापन बड़ी भव्यता से प्रशासन के भरपूर सहयोग से जगह-जगह लोगों ने पुष्पवर्षा कर शोभायात्रा का स्वागत किया। किसी ने फल तो किसी ने बिस्कुट आदि बाँटकर किसी ने जल पिलाकर शोभायात्रा का स्वागत किया। सायं 5 बजे आर्यसमाज तिलकद्वार के मन्त्री श्री कृष्णगोपाल गुप्ता के नेतृत्व में तिलकद्वार आर्यसमाज में यात्रा का समापन हुआ। इस अवसर पर मन्त्री जी ने सभी शोभायात्रा में आये आर्यों का धन्यवाद किया व झाँकियां प्रस्तुत करने वाले बच्चों को सम्मानित किया। प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। ❋❋❋

सुख दुःख तो मानव जीवन में, अपने कर्मों से पाता है,
पहले तो पाप बड़ा लेता, पीछे रोता पछताता है।

सचमुच जग का खेल बड़ा, नहीं समझ किसी के आता है,
कितना ही समझाओ नर को, जाने क्यों पुण्य न भाता है।

www.thearyasamaj.org

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	भ्रांति दर्शन	20.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00
शंकर सर्वस्व	120.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	बाल मनुस्मृति	12.00
नारी सर्वस्व (प्रेस में)		ओंकार उपासना	12.00
शुद्ध कृष्णायण	50.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	10.00
शुद्ध हनुमच्चरित	60.00	दादी पोती की बातें	10.00
विदुर नीति	40.00	क्या भूत होते हैं	10.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	आर्यों की दिनचर्या	10.00
चाणक्य नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	8.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
नित्य कर्म विधि	32.00	सच्चे गुच्छे	8.00
वेद प्रभा	30.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
शान्ति कथा	30.00	वृक्षों में जीव है या नहीं	5.00
संगीत रत्नाकर प्रथम भाग	25.00	गायत्री गौरव	5.00
यज्ञमय जीवन	30.00	महर्षि दयानन्द की मान्यतायें	5.00
दो बहिनों की बातें	30.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
दो मित्रों की बातें	30.00	सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	5.00
चार मित्रों की बातें	20.00	मुक्ति प्रदाता त्रिवेणी	5.00
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
मील का पत्थर	20.00	भारत और मूर्ति पूजा (प्रेस में)	

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2017 के लिये वार्षिक शुल्क 150/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 1500/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....
....
....
....
....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
फोन (0565) 2406431
मोबाइल- 9759804182

Yogendra # 9927136600

स्वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित